UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180914
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. Accession No.

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

गीत-संगम

(सन् १९४९ ई० से १९५५ ई० तक के
कतिपय गीतों का संग्रह)

श्रीरञ्जन सूरिदेव

लता-प्रकाशन : पटना-३

लता-प्रकाशन-धारा : प्रथम तरङ्ग

प्रकाशक :
श्रीमती लता रञ्जन
लता-प्रकाशन
पटना-३

सर्वाधिकारी :
प्रकाशक

प्रकाशन-वर्ष :
सन् १९५५ ई० : वि० सं० २०१२

मूल्य :
ढाई रुपये मात्र

प्राप्तिस्थान :
बिहार-प्रकाशन-समिति
रमनाबाग, पटना-४

❀

कल्पना-कुटीर; श्रीशुम्भेश्वरनाथ, धौनी
डाकघर—सरैयाहाट
दुमका (सं० प०)

मुद्रक
श्री रामकिशोर मिश्र
युगान्तर प्रेस
पटना-४

समालोचनार्थ

आशा, कामना और वेदना

की

उन समस्त मधुरिमाओं को

जो

मेरे गीतों के प्रेरणास्रोत हैं !

—अनन्त श्रद्धा के साथ

श्रीरञ्जन

"रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ।।"

—कालिदास

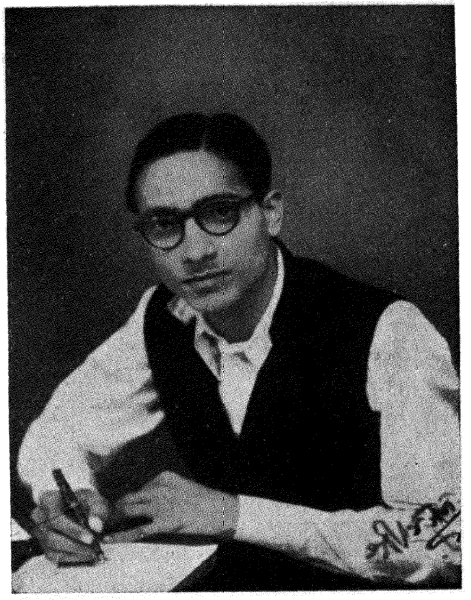

रचयिता

संक्षिप्त परिचय

मूलनाम : राजकुमार पाठक; **उपनाम :** श्रीरञ्जन सूरिदेव

जन्म-काल : ३ फरवरी १९२७ ई०

पितृनाम : (स्व०) पं० श्री बदरीनारायण पाठक

पितृस्थान : कल्पना-कुटीर, श्रीशुम्भेश्वरनाथ, धौनी, दुमका (सं० प०, बिहार)

शिक्षा : संस्कृत-हिन्दी-स्नातक

कार्य : साहित्य-सेवा

विशेषाभिरुचि : गीत, आलोचना और जैन वाङ्मय

आगामी प्रकाशन : गीत-निर्झर; मेघदूत : एक अनुचिन्तन; उपासकदशासूत्र (जैनसूत्रानुवाद)

स्वान्तःसुखाय

❀ यह मेरी सर्वप्रथम कृति—'गीत-संगम' आपको उपहार है। मेरे इन गीतों की व्यष्टि में समष्टि स्वरित है। इनमें धूमायित हृदय का अन्तःप्रज्वलन मिलेगा सही, पर यदा-कदा मीठी लपटों के रंगीन उच्छ्वास भी यत्र-तत्र दीखेंगे। आवेश-संयम की सुष्ठुता में जहाँ मैं क्षीणबल हो गया हूँ, वहाँ मेरा सूत्र हाथ से निकल गया है। वैसे स्थल मेरे आगामी विकास के नियामक बन सकेंगे :

❀ इन गीतों में दूसरों का पराग चाहे जितना हो, पर सौरभ अपना ही है। इनमें मैंने वाक् और अर्थ दोनों को एक लघु भूमिका में संयुक्त करने का प्रयत्न किया है। मेरे खयाल से ये गीत भी हैं, कविता भी हैं। गीत-शिल्प और काव्य-वस्तु के संश्लिष्ट रूपायन में ये सर्वतः सफल न भी हुए हों, किन्तु लक्ष्य यही रहा है :

❀ इनमें जो कुछ आया है, उसका माध्यम मैं हूँ। फिर भी, मेरी अनुभूतियों में इतनी तीव्रता कदाचित् नहीं मिलेगी, जिससे मैं इन गीतों में असामान्य विशेषता का दावा करूँ। तब, इतना अवश्य है कि इन गीतों की अनुभूतियाँ सबसे होकर आती हुई भी मेरी अपनी हैं और मेरी अपनी होती हुई भी सबकी हैं। यदि कोई इनमें अपने को प्रतिबिम्बित देखे, तो मैं इसे अपने 'अहम्' का सहज सम्प्रसारण समझूँगा :

❀ अपने गीतों में मैंने जिस भाषा से काम लिया है, वह बहुत दूर तक मेरी वशंगता है। ऐसे स्थल भी हैं, जहाँ मेरे अध्ययन ने मुझे स्वतन्त्र नहीं रहने दिया है, इसलिए गीतों में जहाँ भारीपन आ गया है, या कि स्वरमैत्री के लिए, जीभ को सहारा देकर, बुद्धि से व्यायाम कराया गया है, वहाँ पुस्तकीय संस्कार ने मेरे कवि को आक्रान्त कर लिया है। मै उसका परिमार्जन चाहता हूँ, पर उसमें मेरी वैयक्तिक ऐतिहासिकता रहेगी :

❀ मैं अपने आचार्यस्थानीय महामनाओं की अमूल्य आशी:कामनाओं से संवर्द्धित हूँ। तत्र भवान् श्रीनलिनविलोचन शर्मा जी ने इस गीत-संग्रह के नामकरण के साथ ही इसकी भूमिका भी लिखकर, मुझे आत्मविश्वास एवं कृतज्ञता का अधिकारी बना दिया है :

सम्मेलन-भवन, पटना-३
गंगा-दशहरा, वि० सं० २०१२

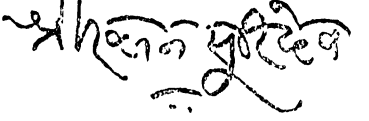

भूमिका

श्रीरञ्जन के गीतों का प्रस्तुत संग्रह, अपनी कोटि में, महत्त्व का स्थान अधिकृत करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इस विश्वास के ये कारण हैं :

श्रीरञ्जन के गीत उर्दू गजल के कलमी हिन्दी रूप नहीं हैं। गजल की सीठी से हिन्दी के कवियों और श्रोताओं ने जो रसोपलब्धि की है, वह उनकी रुचि और गजल की खुशकिस्मती का सुबूत है। बेचारी गजल जब अपनों से ठुकरा दी गई, तो हिन्दी के रसिकों ने अपना भाग्य सराहते हुए उसे सर-आँखों लिया। बच्चन और उन जैसे अन्य गौण छायावादियों ने, जो बीच-बीच में प्रगतिवाद के साथ भी अभिसार कर लेते थे, लिखने और पढ़ने दोनों के तर्ज में गजलगोई की जो नकल की है, वह आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास के ह्रास-युग का छोटा-सा परिच्छेद बनेगा। अनेक त्रुटियों के बावजूद श्रीरञ्जन के गीतों से मैं परम प्रीत हुआ, क्योंकि उन्होंने मन्दिर में नमाज पढ़ने का खिलवाड़ नहीं किया है। श्रीरञ्जन के गीत गजल की नहर से नहीं, अपितु हिन्दी की अपनी गीत-धारा से जुड़े हुए हैं।

इन गीतों की एक और श्लाघ्य विशेषता है। भावुकता का उद्वेल ज्वार इन गीतों में भी यहाँ-वहाँ उफना जरूर है, किन्तु शास्त्र-दीक्षित कवि के विवेक-कूल का अतिक्रमण वह कभी-कभी ही कर पाया है। ये गीत प्रियजनों की चिता के पास की गई काव्य-साधना के परिणाम नहीं हैं, जिसकी साभिमान घोषणा उपर्युक्त गौण छायावादी करते

थकते नहीं थे, और 'आह' करके, अकबर के शब्दों में, 'फीस' लेने में झिझक तक महसूस नहीं करते थे। श्रीरञ्जन के गीतों में व्यथा की अभिव्यंजना तो हुई है, किन्तु उसमें मृत्यु-रिरिंसा की चिराँयध नहीं है।

श्रीरञ्जन की गीत-कविताओं में गौण छायावादियों की एक अन्य विशेषता का अभाव है, जो इनके लिए गुणप्रद सिद्ध हुआ है। ये गीत होते हुए भी मात्र कंठ से नहीं निकले हैं और सिर्फ कानों के लिए नहीं बने हैं। इनमें श्रोता या पाठक के विवेक को थपकी देकर सुलानेवाली धुन और लयदारी नहीं है। ये गीत होने के बावजूद ऐसी कविता हैं, जो बुद्धि-तत्त्व की उपेक्षा नहीं करती।

यदि इन गीतों में चित्रांकन और भावाभिव्यंजन की और अधिक निबिड़ एकतानता होती, श्रुति-पेशलता का अनावश्यक मोह न रहता, मात्रा-पूरक उपसर्ग-विशेष का बहुल प्रयोग नहीं किया जाता, तो ये अपेक्षया उत्कृष्टतर बन पड़ते। लेकिन, यह संग्रह सफर का पहला पड़ाव है।

ब्रजकिशोर पथ, पटना-१
११-५-५५ ई०

नलिनविलोचन शर्मा

शुभाशंसाएँ

१

श्री रञ्जन सूरिदेव एक मृदुल-मधुर-मनोहर मानस के नवयुवक कवि हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत, हिन्दी आदि साहित्यिक भाषाओं के मर्मज्ञ भी हैं। उनकी कविताएँ मुग्धकारिणी और हृदयहारिणी हैं। जब उनका पूर्ण विकास होगा, तब वे हिन्दी-जगत् में स्पृहणीय प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। वर्त्तमान आरम्भिक अवस्था में ही उनकी कविताएँ मनोज्ञ एवं रमणीय हैं। भगवान् उनको यशोधन करें।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-३
गंगा-दशहरा, वि० सं० २०१२

शिवपूजन सहाय

२

श्री रञ्जन जी की कविताओं का यह संग्रह मैं जहाँ-तहाँ पढ़ गया। कविताएँ मुझे पसन्द आईं। भाव की गंभीरता के साथ-साथ इनमें भाषा का लालित्य भी है। श्रीरञ्जन जी बिहार के होनहार कवि हैं, सुलेखक हैं। हिन्दी-साहित्य उनसे अच्छी आशा रखता है। साहित्य के क्षेत्र में उनकी सतत अभिवृद्धि हो, यही मेरी शुभकामना है।

आर्यकुमार पथ, पटना-४
१८-५-५५ ई०

छविनाथ पाण्डेय

समन्वय

बनी **वेदना** मेरी छाया !
आशा में पलती जाती है सघन **कामना**–कीलित काया !

नील गगन में पावस-घन-सी
चिन्ता छाती अन्तःपट पर;
ऊपर दूर उठ रही भावना
क्या जाने, किस बल-जीवट पर;

कभी श्रान्ति के बहिर्द्वार तक विश्राम न पल भर आ पाया !

विश्वास-रज्जु में बँधता नित–
भाग रहा चंचलतर धीरज;
क्षुब्ध दृगों के अन्तर्हिम में
गलता जाता मानस-नीरज;

यौवन-पुट में मादकता का कभी न मीठा मधु लहराया !

मथित-ग्रथित-सा अन्तर्जीवन,
छिपी हुई आकुलता मन की;
करुणा-तरल परिस्थिति, मेरी–
एकमात्र पूँजी, जीवन की;

कभी भूलकर भी इच्छा के अधरों पर उन्माद न आया !

আশা

१

आशा में ही झंकृत होते मेरे सुख के तार !

प्राणों में सो चली आज वह
रो-गाकर मेरी अभिलाषा;
जाग रही अब आग राख की
खौल रही जिसमें कि पिपासा;

सपनों में प्रस्पन्दित होते मेरे उर के प्यार !

पलकों में बन चली पुलक अब
पीड़ा का प्रस्फुरण अनोखा;
रोम-रोम में चुभता जाता
एक राग कुछ तीखा-चोखा;

चला जा रहा हृदय माधुरी-सौरभ के उस पार !

घुलती जाती मूक वेदना
लालस-सालस-से जीवन में;
सिमट चेतना पैठ गई अब
विकल चपल-सी मन-चितवन में;

चुपके खुल-खुल जाते भावों के सब अन्तर्द्वार !

ललित लालसा-मौलसिरी से
झाँक रही उफनती चाँदनी;
उमड़ चली सन-सन उलझन में
यौवन की कुछ लहर मादिनी;

चिन्ता की रजनी में होते दुख के मधु अभिसार !

२

मैं तुमको पहचान न पाया !

शैशव में यौवन-सा गर्वित,
कलियों में केसर-सा सुरभित;
स्वप्न-परी-सा पद-रव मूर्च्छित,
चुपके मेरे उर में आया !
मैं तुमको पहचान न पाया !

यौवन में सुषमा-सा उज्ज्वल,
वैभव में विनयी-सा कोमल;
निराकार अम्बर-सा निर्मल,
सहसा मेरे दृग को भाया !
मैं तुमको पहचान न पाया !

दृग खोलूँ, छिप जाता तम में,
दृग मूँदूँ, दिप उठता मन में;
ढूँढ़ थकूँ, पर तू कण-कण में,
हार गया, पर जान न पाया !
मैं तुमको पहचान न पाया !

कल्पित आकृति-सा चिरसुन्दर,
दूर स्वजन की स्मृति-सा सुखकर;
आत्मार्पण का भाव मधुरतर,

उर की वीणा ने गुण गाया !
मैं तुमको पहचान न पाया !

तू अज्ञात, अरूप, अचिंतित,
तुझसे सारा विश्व अपरिचित;
आकर्षण-सौन्दर्य अपरिमित,
व्याप रही है तेरी माया !
मैं तुमको पहचान न पाया !

———

३

आशा के उजड़े उपवन में कूक उठी यौवन की कोयल !
वर्त्तमान के झंझानिल में,
भावी का अरुणोदय धूमिल;
मानस-निर्झर के अंचल में,
चिन्ताओं के सपने पंकिल;
नयनों में प्रश्नों की रेखा, रेखाओं में उर की हलचल !

हलचल में तीखी-सी पीड़ा,
पीड़ाओं में मुखरित यौवन;
यौवन में जलती-सी ज्वाला,
ज्वाला में सुषमा-अन्वेषण;
भावोदय की धूप-छाँह में अभिलाषाएँ आहत विह्वल !

विकल विश्व की विपुल व्यथा में,
चिर अतीत का अस्फुट-सा स्वर;
स्वर में धुँधली-सी स्मृतियों की,
चलचित्रों की-सी गति सर-सर;
गति में प्रतिबिम्बित आँसू की छाया पतली-हल्की चंचल !

थकित प्रीति के महानन्द में,
मूक हृदय का मृदु उन्मन्थन;
मन्थन में फूलों-सा कोमल,
प्राणों का नीरव प्रस्पन्दन;
तृष्णा पी-पी जलता जाता जीवन-दीपक निश्चल निश्छल !

———

४

निर्बल आशा बल न सकेगी !
पीड़ा की झंझा में उर की क्षीण वर्त्तिका जल न सकेगी !

'अहम्', 'माम्', 'मम' के भावों में,
अस्त-व्यस्त विपुल जग-जीवन;
अपनी इच्छा की मस्ती में,
मग्न सभी, निष्फल है क्रन्दन;
दुःख-दग्ध मन के साँचे में सुख की प्रतिमा ढल न सकेगी !

निठुर नियति प्रतिपल प्रतिपग पर,
भार लादती जाती दुर्वह;
दूर भागती रहती दुनिया,
मनुज अकेला ढोता अहरह;
काँटों की पगडंडी पर तो सूखी ठठरी चल न सकेगी !

जीवन है चिन्ता की आँधी,
असह वेदना का सम्मेलन;
अश्रु प्राण का सत्स्वरूप है,
रूप मात्र है हास्योद्वेलन;
पतझड़ की हुंकृति में मधु की क्षणभर की स्मिति पल न सकेगी !

जीवन और मरण अग-जग का,
व्यक्त चिह्न है प्रबल व्यथा का;

स्नेह, प्रणय, ममता औ' माया,
मूक शब्द है करुण कथा का;
दुख की अवहेला कर दुनिया अपने को नित छल न सकेगी !

विस्मृति है भीषण व्याकुलता,
नित स्मृति है गति अमर चिरन्तन;
सतत दूर के परिचय में ही—
रहता सु-निकट प्रणय सनातन;
मृदुल प्यार की छवि-छाया में संकट-बेला टल न सकेगी !
निर्बल आशा बल न सकेगी !

———

५

सिहर उठते प्राण मेरे !
नित्य विस्मृति की विकलता चुप चुराती गान मेरे !

याद जिससे मिली, उसको
आश पर छलता रहा हूँ;
इसलिए अभिशप्त-सा मैं
प्यास से जलता रहा हूँ;
भाव-भिक्षा-हित भटकते हृदय के लघुयान मेरे !

याद के विस्तृत गगन में
नयन-घन घुलता रहा है;
गहन उर के सघन वन में
चपल मन डुलता रहा है;
कूल छूने को उमड़ते श्वास के तूफान मेरे !

मरघटी लघु दीपिका-सा,
रात-दिन बलता रहा हूँ;
और नित अपने किये पर,
हाथ ही मलता रहता हूँ;
रोज छूते गुदगुदी को प्यार के अरमान मेरे !

———

६

विकल उनींदी पलकों में मैं सपना-साया बाँध रहा हूँ !

मन-खँड़हर में गूँज रही है,
भूली-बिसरी याद किसी की;
लहराती है तार-तार में,
मिसरी-मीठी दाद किसी की;

साँसों में नित मुस्काती-सी छाया को मैं साध रहा हूँ !

दृग-सागर में उभर रहा है,
तूफान किसी के सपनों का;
उर-उपवन में उफन रहा है,
अभिमान अपरिचित अपनों का;

भावों को नित उसकाती-सी माया मैं आराध रहा हूँ !

प्राणों में पल-पल सौरभ-सा
भरता है उन्माद किसी का;
आशा का इतिहास कि जीवन
पाल रहा अवसाद किसीका;

साध कि सच हों सपने, जग में काया को मैं नाध रहा हूँ !

———

७

वे दिन बीत गये चुपके से !

लज्जा की मीठी लाली में
डूब गई थी बोझिल पुतली;
सुषमा की पीयूष-नदी में
थी अशान्त-सी यौवन-मछली;
आशाएँ आ उर-तट से टकराती रहती थीं झटके से !

सुख-विहान में मन का पंछी,
कलरव की कविता-सी करते;
प्राणों की प्राची के पग में
अरुण, राग का जावक धरते;
बन जाते थे प्यार हृदय के अश्रु-विन्दु भूले-भटके-से !

भूख-प्यास थी खेल प्रणय का
बेचैनी थी सुन्दर सपना;
अगणित दोष, कला की व्रीड़ा
पीड़ाएँ थीं वैभव अपना;
रचते थे संसार मनोहर रुदन-गान धोमे-हल्के से !

———

८

भोले, अपना प्यार न खोना !

संसृति-वीणा पर कर्कश-से झंकारों का भार न होना !

नयनों में गीली-सी आभा
आभा में नीरव आमन्त्रण;
चंचल पलकों में धूमिल-सी
छाया का कंपित परिवर्त्तन;

परिवर्त्तन की हलचल में जीवन-धन का उपहार न खोना !

पंखुड़ियों में मीठा सौरभ
सौरभ में उर का उन्मंथन;
ओठों पर तीखी पीड़ा की
मुस्कानों का मंजुल नर्त्तन;

नर्त्तन की मादकता में निज सुध-बुध का संसार न खोना !

प्राणों में नित-नूतन आशा,
चरणों में गति निर्भय, उन्मन;
सरिता की विह्वल धारा में
बहने की इच्छा उत्तेजन;

उत्तेजन में पड़कर अपनी सत्ता का शृंगार न खोना !

सुस्मिति के सुमनों की छवि में
अश्रु-चिता का मर्मिल क्रन्दन;
मुक्ति-मार्ग में कुटिल शूलमय
जकड़ ऐंठनेवाला बन्धन;
मुक्ति-मार्ग के महामोह में फँसकर चिन्ता-क्षार न होना !
भोले, अपना प्यार न खोना !

———

६

श्यामल अलकें डोल रही थीं !
सुषमा की सम-विषम तुला पर मादकता मधु तौल रही थी !

सौरभ का आलिंगन करता
मचल रहा था मृदु हरिताञ्चल;
आकर्षण को प्यार बनाने
लहराता था यौवन चंचल;

नयन-पात्र में रूप-सुधा का तीखा आसव घोल रही थीं !

अरुण किरण से कान्त गगन पर
लहराते थे सावन के घन;
चलता था अविरतगति, बेसुध
मन-मयूर का उन्मन नर्त्तन;

पुरवैया की कोमल कृश कटि झूम-झूम झुक डोल रही थी !

अंतर्हित थी अंगुलि, पर थे,
मृदुल स्पर्शाभास सिहरते;
रोम-रोम के तारों में, थे
पुलकित मन्द मधुर स्वर भरते;

रस-धारा से गीली-कम्पित हृदय-रागिणी बोल रही थी !

मानव-शिशु था चकित-मुग्ध-सा
मींच लिये थे दोनों लोचन;
कानों से चुप उतर चुका था—
उर में, 'सुन्दर' का छवि-दर्शन;

सलय तान से, बन्द भाव के, वातायन वह खोल रही थीं !
श्यामल अलकें डोल रही थीं !

———

१०

आराध्य मधु-सुषमा तुम्हारी !

पलक पुलकित, दृग मदालस,
अधर-प्रस्पन्दन निरालस;
चपल अंचल में छिपी चांचल्य की उपमा तुम्हारी !

मूक नयनों के निमंत्रण,
मुक्त अलकों के प्रकम्पन;
कह रहे तेरी मृदुल-सी कामनाएँ गुप्त सारी !

सलज-सी मुस्कान मीठी,
प्रणय-रस की प्यास तीखी;
विश्व-रथ्या में निरन्तर खोजती मधु-धार न्यारी !

गीत-सा मंजुल मृदुल तन,
प्रीत-सा अश्लथ सुयौवन;
लख, विवेकी भाव बनते प्यार से उन्मत्त भारी !

रूप-सरि की हर लहर पर,
मधु-निशा के हर प्रहर पर;
स्वप्न-जग की हर डगर पर डोलती तू मधुकुमारी !
आराध्य मधु-सुषमा तुम्हारी !

———

११

मरघट में छलक रही प्याली !
मगन-मस्त-सी चित्रकार की चल रही तूलिका मतवाली !

साँसों से ही हरदम, दुर्दम
तूफान खेलता आया है;
अपने अन्तर की लपटों को
इंसान झेलता आया है !

ढल रही कुचलती पत्थर का सिर धार नदी की नई निराली !

क्षितिज, जानते हो, वह क्या है ?
धरती अम्बर से लड़ती है !
वड़वानल को शीतल करने
नित लहर गगन पर चढ़ती है !

पूनम की शान सदा बन कर अमा अकड़ती काली-काली !

दीपक मिट्टी, घुल जायेगा,
ज्योति रुदन में नित हँसती है !
जीवन को तिमिर-कसौटी पर
आशा उठ-उठकर कसती है !

मोद-मुदित मन मौत बुलाती, मरघट में छलक रही प्याली !

———

१२

क्षण-क्षण मेरी कलित कल्पना साकार स्वयं बन जाती है !

तर्क-कल्पना-तन्मयतावश
होता तेरा बाह्य निरीक्षण;
आगे आ तू स्वयं विहँसती
बढ़ता प्रेम-प्रमोद-प्रवर्षण;

खो व्यक्तित्व, चेतना मेरी उन्माद स्वयं बन जाती है !

पुण्य-पुंज-सा भाव-कुंज से
मनोयान लघु तेरा आया;
शनैः-शनैः हो पुष्ट कल्पना—
ने सच्चा सौन्दर्य दिखाया;

स्वप्न-तर्क-सी यदा कदाचित् निज बुद्धि सजग बन जाती है !

अभिलाषा, कर्त्तव्य परस्पर
मचा रहे संघर्ष निरन्तर;
रोक रहा वासना-लहर को
दृढ़ हो संयम-बाँध प्रबलतर;

तन-मन की सुविचित्र समन्वयता राग अमिट बन जाती है !

———

१३

सजल दृग में देखता सावन-निशा की नृत्य-लीला !

सो रहा संसार सुख के
स्वप्न में आमग्न होकर;
मूर्त्त-सी निज कल्पना को
बाँह भर, उर से लगाकर;

खो रहा सुध-बुध प्रणय मृदु-
मिलन मधु की धार पीकर;
ज्वार-सा अभिमान, नीरव मत्त-सा यौवन रसीला !

बिछलता परिधान कज्जल
नग्नप्राय निशीथ-रानी;
झमझमाती मन्द-धीरे
पैंजनी कहती कहानी;

जुगनुओं की ज्योति में घन-
श्यामवदना झिलमिलाती;
आ हहर झकझोर देता पवन पश्चिम का हठीला !

मेघ दल के दल सँभलकर
आ रहे मल्हार गाते;
मस्त हो, मदमत्त हो, निज
दुन्दुभी घिर-घिर बजाते;

दामिनी-द्युति में नशीली
भंगिमा से मुस्कुराती;
कर रही सम ताल-सुर पर नृत्य मोहक औ' मदीला !

रिमझिमाते राग, पावस—
के, अतुल उद्वेगशाली;
धो रहे रजनी-चरण, निज—
का समझ सौभाग्यशाली;

थिरकतीं पलकें, छहरतीं—
नर्त्तकी-अलकें सुवासित;
मुग्ध जग, पा एक चंचल नैन का दर्शन कटीला !

केतकी की प्यालियों में
ढल रहा कादंब सुरभित;
बाँटती प्यारी निशा—
गंधा जिसे हो मोद-मुखरित;

पी प्रचुर, निःस्तब्ध-निश्चल
निखिल जग के नृत्य-दर्शक;
सुप्त जग, पा एक आलिंगन अनोखा औ' सजीला !

१४

आरती स्मृति की उतारूँ !
प्राण का दीपक जला नित पंथ में तेरा निहारूँ !

रँग-विरंगी भावनाएँ
फूल-सी खिल सज गई हैं;
पवन-चंचल मन-विपिन में
बीन-बीती बज गई है;
शूल चुभते कंठ से नित प्राण ! में तुझको पुकारूँ !

रक्त-रंजित मर्म-गाथा
शब्द पर खुल-खिल गई है;
शून्य में साकार हो वह
छन्द से घुल-मिल गई है;
मीड़ हो मुखरित, इसी से तार तंत्री के सँवारूँ !

गगन-गंगा के शयन पर
स्वप्न व्याकुल हो उठा है;
श्वसित रजनी के नयन में
मूक हिमजल रो उठा है;
याद का अभिशाप लेकर प्यार को कैसे बिसारूँ !

१५

लगता उच्छ्वास तुम्हारा है !
सब कुछ है तेरा ही तेरा केवल विश्वास हमारा है !

नील व्योम के विपुल फलक पर
फैल रही अरुणा की लाली;
मगन मस्त-सी चित्रकार की
चल रही तूलिका मतवाली;
देकर रूप कि साँस-साँस को तारों का रास उतारा है !

वयःसंधि के क्षितिज-द्वार पर
निखर रहा संध्या का यौवन;
दूर कहीं बजता पायल-स्वर
बिखर रहा शशि का मन उन्मन;
नयनों में भर अश्रु निशा के तम-कुन्तल-पाश सँवारा है !

लिये प्राण-उपहार समीरण
जोह रहा सौरभ का आँगन;
अलस उनींदी कलि-पलकों में
गूँज रहा मधु-स्वागत-गायन;
भरकर मीड़ हृदय-वीणा में अतुलित उल्लास पुकारा है !

१६

पास अब कुछ आ रहा हूँ !
श्वास में विश्वास का आभास नित कुछ पा रहा हूँ !

कामना ने वेदना को राह अपनी मान ली है,
चेतना ने शृंखलाएँ तोड़ने की ठान ली हैं;
जिन्दगी की हर दिशा में चाह ने गति मोड़ दी है,
पीर ने छिलते पगों में आह अपनी जोड़ दी है;

प्यास को मधुहास के अब पास धीरे ला रहा हूँ !

ज्योति से जलते गगन पर लक्ष्य की मुस्कान कंपित,
पन्थ पर प्रतिपल किसी का हो रहा आह्वान झंकृत;
लालसा के हर पहर में द्वार मन का खुल गया है,
आँसुओं के खार में मधुप्यार उनका घुल गया है;

नाश में अविनाश का उल्लास पाता जा रहा हूँ !

चाँद तो अब चाँदनी का राज कुछ-कुछ पा गया है,
फूल को सोंधी सुरभि का साज कुछ-कुछ भा गया है;
व्योम के श्यामल शयन पर गीत कुछ बिखरे हुए हैं,
और भूपर प्रीति के कुछ नाज भी निखरे हुए हैं;

हास में, उपहास में नित रास का सुर गा रहा हूँ !

१७

लोट रही श्यामलता धरती पर !

घन के उन उच्छ्वसित दृगों में
चपला का स्वप्निल उन्मीलन;
उद्गति चरण विकल पुरवा के
गीली स्मृतियों का परिशीलन;
हरे-भरे कुछ भाव अंकुरित जन-जन के मन की परती पर !

उत्सुक नभ के सरस कंठ में
प्रिया-पीर-स्वर का अनुगायन;
नव शाद्वल उत्कर्ण मोद से;
नस-नस में रस का अनुधावन
घुले, ढुले कुछ अश्रु गीत बन जन-जन की चिन्ता-रेती पर !

सतरंगी तस्वीर तेज-सी
अंग-अंग में दिपता कंचन;
मुस्कान पात की पलकों में,
वन-वन का मन नूतन उन्मन;
लुकी-छिपी कुछ साध सलोनी बरस रही चुप उर-खेती पर !
लोट रही श्यामलता धरती पर !

१८

स्वप्न, प्यार, बन्धन, जग-जीवन !
खुली तिमिर की गीली अलकें;
मुग्ध धरा, नभ, जड़ औ' चेतन;
रन्ध्र-रन्ध्र में भरी शून्यता—
अणु-अणु का करती आमन्त्रण;
शीतल-मन्द पवन वन-वन में; यौवन, जीवन, घन आकर्षण !

प्रस्पन्दन से भरे प्राण में;
निःशब्द श्वास का कोलाहल,
कोलाहल में रूप ले रही,
विश्वासों की आशा विह्वल;
सुरभित, सौम्य-सुमन मन-मन में, मंथन, उलझन, उन्मन-उन्मन !

चाँद क्षितिज के आलिंगन से—
मुक्त, गगन को उठा चूमने
सुधा लिये चाँदनी धरा पर—
उतरी, सुषमा लगी झूमने;
छविमय मुग्ध मुदित तन-तन में, सन-सन-सन, सिहरन परिहर्षण !

मुस्कानों की लहरें तीखी,
बरबस हँस-हँस देता क्रन्दन;
पीड़ा में संकेत प्यार का,
खिल-खिल उठता मन का नन्दन;
अपनापन, कम्पन, कण-कण में, पग-पग कूजन, गुंजन, शिंजन!

१६

चेतना फिर आ रही है !
रूप की ज्वाला उमड़ उर-द्वार छूती जा रही है !

तप्त अन्तर में निरन्तर
साधनानल खिल रहा है;
वेदना की वाटिका में
आश-द्रुमदल हिल रहा है;
रूप की तृष्णा तरल मनुहार करती आ रही है !

आमरण फैली रहेगी
कामना की रिक्त झोली;
देखकर दुनिया करेगी
सिर्फ आपस में ठठोली;
चाह सब परिहास का प्रतिकार बन लहरा रही है !

जानता हूँ, भावना से
दूर होना ही पड़ेगा;
मानता हूँ, कामना को
चूर होना ही पड़ेगा;
पीर नित बलिदान होने तीर पर अकुला रही है !

आमरण हम दूर, लेकिन
याद को जलना सुहाता;
रूप की आराधना में
प्राण को घुलना सुहाता;
प्यार की हर साँस अपनी ज्योति में शरमा रही है !

२०

शून्य नीरव नील नभ में चित्र मैं किसका बनाता ?

मेघ-संकुल भाग्य-अम्बर;
बुद्धि-विद्युत् कौंधती है;
मृदुल आशा की शिखा को
नियति पग से रौंदती है;

नित अकेला आज जग में मित्र मैं किसको बनाता ?

एक है विश्वास दीपित
जगत् जिससे जगमगाता;
एक है उच्छ्वास जीवित
दुःख जिससे डगमगाता;

पीर-प्लावित इस धरा पर क्षुब्ध अपने को मनाता !

कामना की तूलिका में
भाव के हैं रंग चोखे,
साँस की प्रतिमा हृदय में
अर्चना हैं प्यार तीखे;

गा रहा हूँ गीत, पर क्या जानता, किसको सुनाता ?

२१

सखि री ! आज नयन से दूर !

मन-मधुदूती पंचम स्वर में
कूक रही है नस-डाली पर;
उर-पुर है झन-झन-झन झंकृत,
तरल लहर यौवन-प्याली पर;

स्नेह-धूल से धूसर अन्तस्,
सखि री ! आज सघन भरपूर !

निश्चल नत पलकों में माधव
मुस्काता है अपना बनकर;
अधरों पर यौवन की लाली;
इतराती है सपना बनकर;

मृदुल पवन से उलझी अलकें,
सखि री ! आज नयन से दूर !

पीड़ा के इंगित साँसों में;
आशा का चुप चंचल नर्तन,
दर्द-भरी सूनी व्रीड़ा में,
इच्छा का पल-पल परिवर्त्तन;

दर्शन का विश्वास अमर-सा,
सखि री ! प्यास असीम अपूर !
सखि री ! आज नयन से दूर !

२२

आज मन चंचल बना है !

तारिका-विजड़ित गगन में
भाव मेरा खो गया है;
घोर तम-सागर-लहर में
स्वप्न मेरा सो गया है;
आज कुछ उन्मन नयन में सघन घन जल-जल बना है !

शिशिर की सिहरन तरल में
उर-चरण चंचल बना है;
विकल विस्मृति के प्रहर में
तरुण मन विह्वल बना है;
आज कुछ अनबन पवन में तुहिन-कण ढल-ढल बना है !

रात की सज-धज सलज में
दीप तन्द्रिल बल रहा है;
भाव के सालस जलज में
प्राण-परिमल घुल रहा है;
आज हिम-मधुवन-भवन में सुमन-दल मलमल बना है !

२३

ठुकरा न सका मैं आमन्त्रण !

बेसुध मानस तो खिंच ही गया—
प्राणों में नव रस सिंच हो गया;
नस-नस में दौड़ गया कम्पन !

चंचल-सी चितवन चुभ ही गई,
सुन्दर-सी मूरत खुब ही गई;
टूट गये सब बाधा-बन्धन !

उर-पुर मे आशा बँध ही गई,
तारों पर कविता सध ही गई;
छू गया नयन को आकर्षण !

लिप्सा की सीमा कट ही गई,
बल-बुद्धि-सिद्धि सब मिट ही गई;
जड़िमा बन जकड़ गया मोहन !

बोझिल मन अविचल चल ही दिया,
इति में अथ का पथ मिल ही गया;
हो गया सनातन चिरनूतन !

२४

कर सकता मैं प्यार तुम्हें यदि !

व्यथे ! तुम्हारी कथा अकथ है,
तरुण-करुण-सी कसक-मसक है !
पता नहीं पथ या कि विपथ है ?
जलन-जहर का एक चषक है !

हाला पी-पीकर स्मितियों का दे सकता उपहार तुम्हें यदि !

भाव-अभाव स्वभाव तना है,
जीवन का पल घाव बना है,
पता नहीं सुख या कि दुःख है ?
उर में एक विराव घना है !

कर्कश स्वर को सहकर मीठा दे सकता झंकार तुम्हें यदि !

असंतोष में भी कुछ रस है,
सपनों का संसार सरस है;
पता नहीं, वर या कि शाप है,
प्राण निरन्तर ही परवश है !

जीवन-दीप जलाकर नित दे सकता ज्योतिर्धार तुम्हें यदि !

२५

सपने अपने हैं, जीवन भर !

माना यह जीवन क्षण भर का,
जिसमें बादल, बिजली, करका;
मनोराज्य ढह जानेवाला,
मनुज अकेला घर-बाहर का,
बीत रही जलती घड़ियों की साँसें हैं बीती पर निर्भर !
सपने अपने हैं, जीवन भर !

यह धूल, धरा की हँसती काया,
यह फूल, हवा से सोंधी छाया,
सुध-बुध को छू देनेवाली,
मदन-माधवी मीठी माया;
थकी निराशा की अभिलाषा अँटकी-उलझी आशाओं पर !
सपने अपने हैं, जीवन भर !

यह संसार वेदना-बोझिल,
कोटि कामना-कर्दम-पिच्छिल,
जीवन का इतिहास अधूरा,
पन्ने फटे, पुराने, धूमिल,
रचने के श्रम का ही केवल प्यार-भरा अभिमान निरन्तर !
सपने अपने हैं, जीवन भर !

२६

मैं विजेता, गा रहा हूँ !
पीर की मँझधार में प्रिय ! नाव खेता जा रहा हूँ !

विपुल भूतल-वक्ष पर तो
धारा उमड़ती जा रही;
विकल अम्बर के हृदय में
विरहिन घटाएँ गा रहीं;
प्यार के प्रतिकार में प्रिय ! दाव देता जा रहा हूँ !

लहर-भुज के पाश में तो
क्षितिज बँधता जा रहा है !
वायु-वीणा पर हृदय-स्वर
सिहर सधता जा रहा है !
प्यार के उपहार में प्रिय ! घाव लेता जा रहा हूँ !

नाव बढ़ती जा रही है,
पाल उड़ता जा रहा है;
डोलता मन हर लहर से—
मूक लड़ता जा रहा है;
भाव के पतवार में प्रिय ! ताव देता जा रहा हूँ !

पय, पयोधर लय बुलाते,
भय उभय-तट पर खड़ा है;
मन अभय मँझधार में, बस
नयन मंजिल पर चढ़ा है;
धार के आधार पर प्रिय ! चाव सेता जा रहा हूँ !

२७

आशा का संसार नयन में !
घिर-घिर घुमड़-घुमड़ आते हैं बादल के उपहार गगन में !

अन्तस्तल की शून्य धरा पर
चिता-प्रतीक्षा जलती जाती;
आशा की संतप्त शिला पर
जीवन-धारा ढलती जाती;

धुल-धुल उभर-उभर आते हैं सपनों के अंबार शयन में !

विस्मृति में चिर स्मृति की लहरें,
लहरों में नित नई उमंगें;
नई उमंगों में उच्छल-सी
प्यार-धार की नई तरंगें;

झर-झर, झहर-झहर जाते हैं पीड़ा के पतझार चमन में !

नित अरूप में तृषा रूप की
अपनापन का ज्ञान सनातन;
प्राणों में संकेत किसी का
आकुल रहता अनुपल, अनुक्षण;

तिल-तिल ठोस हुए जाते हैं मिलने के आधार कफन में !

२८

आशाएँ आधार माँगतीं !
विकल प्रतीक्षाओं का अब तो पल-पल उपसंहार माँगतीं !

तपती रेती पर चल-चलकर;
फोले उग आये जल-जलकर;
ढल-ढलकर पीड़ाएँ पल-पल बहने को अब धार माँगतीं !

आशा की मिट्टी तिल-तिल कर–
तौली है, जीवन छल-छल कर;
मसली-सी इच्छाएँ अब अपने-अपने अधिकार माँगतीं !

प्राणों के दीपक बल-बल कर,
चमकें हैं तट पर झल-मल कर;
जलती-सी ज्योतिर्मय बाती परवाने का प्यार माँगती !

घुल-घुलकर गीले-गीले स्वर,
हिल-हिल उठते उर-तारों पर;
युग-युग की मूक मृदुल मीड़ें अब अपना झंकार माँगतीं !

मीठे आँसू से मल-मल कर
उभरे हैं सपन धुल-धुल कर;
अनुदिन की आहत आकुलता शीतल-सा उपचार माँगती !

२६

जा टिकती है मेरी आशा !

जब चिन्ता व्याकुल होती है,
रो उठता आकुल अन्तस्तल;
सोई पीड़ा जग जाती है,
हो उठता है जीवन चंचल;
जा लगती तब शून्य क्षितिज से पल-पल की मेरी अभिलाषा !

जब अधीरता बाँध तोड़कर
प्राणों में बहने लगती है;
मसली-सी भावुकता नीरव
पीड़ा को सहने लगती है;
जा मिलती तब उन पलकों से मेरी गीली-सी प्रत्याशा !

अविश्वास आँखों में लख जब
पलकें उसको लगतीं धोने;
आहत हो अभिमान कभी जब
भू-लुंठित हो लगता रोने !
एक अपरिचित स्मिति पर मेरी उलझ-उलझ जाती जिज्ञासा !

३०

अन्तस् के चंचल भावों को कोई चुपके चुरा रहा है !

चिन्ता की बौद्धिक शय्या पर
विकल भावना चैन न पाती;
विभा चाहनेवाले मन से
गहन तिमिर की रैन न जाती;
आँसू स्मृति-पट से सपनों को चुपके धोकर छुड़ा रहा है !

सूने जीवन-नभ को बदली
घेर-घेर कर जकड़ रही है;
भाग रही मेरी दुनिया को
दौड़ पूतना पकड़ रही है;
यौवन बचे-खुचे आशा के कण को भी चुप उड़ा रहा है !

दुर्दिन की ठंढी छाया में
दीप ठिठुरते मुस्कानों के,
हँसते श्मशान के आँगन में
क्षार बिखरते अरमानों के;
गीली-सी मेरी पीड़ा से कोई पलकें जुड़ा रहा है !

आँसू पी-पी आँखें जग की
निष्ठुरता को भुला रही हैं;
यथाशक्ति दुख के पन्नों को
फाड़-फाड़ कर जला रही हैं;
कैसे समझूँ, मेरा जीवन भला रहा या बुरा रहा है !

२१

जाग उठी जिज्ञासा मन में !
छिप-छिप खेल रहा है कोई आज पीर का पासा मन में !

छल-छल यौवन की मद-गति में
चंचल-सा विस्मय जीवन का;
उन्मद-सी भावों की सरि में
दर्द मधुर रसमय बन्धन का;
उन्मन-से सपनों की तीखी जाग उठी अभिलाषा मन में !

एक रहस्य छिपा अभिनव-सा
इस जगती के कोलाहल में;
प्रश्न पूछता अन्तस् अविरत,
स्मितियों के इंगित पल-पल में;
धीरे-से वरदान माँगती मीठी-सी कुछ आशा मन में !

रंजित होता है भावों का
व्याकुल-सा अभिसार चिरन्तन;
आकुल अलकों की पलकों में
शीतल-सा उपहार सनातन;
धीरे-से खिलती जाती है अद्भुत-सी प्रत्याशा मन में !

मुखरित नभ के प्रस्पंदन में
एक नई-सी तारक-माला;
उमड़ रही मिट्टी के तन में
मस्ती की मादक-सी हाला;
जाग उठी है एक जटिल-सी जीवन की परिभाषा मन में !

३२

जीवन करवट बदल रहा है !

उजड़े आशा के उपवन में
चिन्ता का मलयज अँगड़ाता;
कलित कामना-किसलय धीरे
किलक रहा, कुछ-कुछ इतराता;
मधुबाला के घन कुन्तल से कोमल घूँघट फिसल रहा है !

किसी दूर की याद निरन्तर
मन में उत्सव बन छा जाती,
उर-वीणा के तरल तार पर
कोई मृदु मीड़ जगा जाती;
चंचल सपनों में भावों का सागर उद्भट उबल रहा है !

आकुल पलकों को व्याकुल-सी
छाया धीरे-से छू जाती;
सौरभ में मकरन्द मिली-सी
आभा नयनों में चू जाती;
लहरायित धरती-छाती पर नीलाम्बर-पट मचल रहा है !

ऊषा के रंजित अधरों पर
पिकी प्यार को घोल रही है,
बौरों की गीली अंगुलि पर
रसिक मधुकरी डोल रही है;
मन की मधुशाला मे मीठा-तीखा तलछट पिघल रहा है !

३३

विकल जीवन पीर से, पर प्राण गाता जा रहा है !

चूर सब अरमान अभिनव,
किन्तु, मस्ती जी रही है;
सतत आहत शीर्ण आशा
स्नेह कल्पित पी रही है;

शुष्क मेरा कण्ठ, अन्तस् गान गाता जा रहा है !

शोक की जलतीं चिताएँ;
राख बनती जा रही हैं—
नित्य की नव कल्पनाएँ ।
हार मिलती जा रही है;

हारता मस्तिष्क, पर उर जीतता ही जा रहा है !

लहर आँधी की उमड़ कर
तरि निगलती जा रही है;
विपद्-बादल में निरन्तर
ज्योति घुलती जा रही है ।

रोकता दुर्भाग्य, मन-जलयान चलता जा रहा है !

३४

मैं गीत बनाता, तुम गाओ !

घुंघराले चल कुन्तल-बादल
लहराते हैं ऊपर-ऊपर;
नीचे, धानी-सी साड़ी में
छहराता प्रत्यंग मनोहर;

मृदु भावों की हलचल में, मैं अश्रु सँजोता, तुम मुस्काओ !

नीरव यात्रा के लघु-पथ पर
स्नेह-पवन दुलराता मन को,
बाँध रही चंचल बढ़ती गति
छूट रहे परिचय के क्षण को;

स्मृतियों के फूलों को मैं चुनता जाता, तुम हार बनाओ ।

मधुर मधुर-से भाव हृदय को
मीठा-सा प्याला भर, देते,
चिन्ता का उन्माद लिये लघु—
प्राण प्यास के हाथ बढाते;

नित अभिनव आशाओं का मैं मेघ उठाता, तुम बरसाओ ।

३५

चिर प्रतीक्षा में हमारी वेदना गल-घुल रही है !

हृदय-मठ में साधना के
दीप जलते जा रहे हैं;
चाह की बलती चिता में
प्राण घुलते जा रहे हैं;

नित कठिन आराधना में कामना ढल-ढुल रही है !

शून्य जीवन में विकट सी
गाँठ पड़ती जा रही है;
प्यार के पल-पात के क्षण
पीर गाती आ रही है;

नित अकेली भावना में कल्पना बँध-खुल रही है !

चुप, उदासी साँस में भर
रात रोती जा रही है;
विकल संध्या दग्ध दिनमणि—
गात ढोती जा रही है;

साधना में काँपती-सी प्रार्थना हिल-डुल रही है !

अचल दृग के द्वार पर वे
अश्रु विह्वल हो रहे हैं;

सजल पलकों के शयन पर
स्वप्न व्याकुल हो रहे हैं;
अर्चना के फूल मुरझे, धूल अब मिल-जुल रही है !

कण्ठ-वीणा पर तुम्हें प्रिय !
मूक स्वर गुहरा रहा है;
'एक क्षण आओ' सतत
आघोष को दुहरा रहा है;
मधुर दर्शन-लालसा में साँस केवल चल रही है !

३६

बुनता जाता मैं अतीत–ताने में नये रंग का बाना !

ढूँढ़ रहा दुख के इतिहासों में–
सुख के सुन्दर-से सपने;
जगत् पराये में मैं हरदम
खोज रहा, कितने हैं अपने ?

खिलता जाता अश्रु-वृन्त पर मेरा फूलों-सा मुस्काना !

भूली सुधियों के पन्नों पर
गीत उग रहा है दर्दीला;
टूटी प्रणय-बीन में कुछ फिर
राग बज रहा ढीला-ढीला;

तान रहा आकुल-से क्षण में तुनुक तरल आशा का ताना !

रह-रह झटका-सा खा जातीं
उलझी चिन्ताओं की कड़ियाँ;
देख 'आज' को काँप रही है
कल की बीती रीती घड़ियाँ;

छिपता जाता है विस्मृति में मन का किस्सा नया-पुराना !

३७

उस पार क्षितिज से लहराता आता मधुर-मधुर नीरव स्वर !

उस स्वर से पहचान नहीं, फिर
लगता अपना पहचाना-सा;
वह स्वर वाणी-हीन मूक, फिर
मुखरित अन्तर का गाना-सा;

उसकी झंकृति, उसके कंपन से आलोलित सकल चराचर !

रूपहीन वह स्वर-लहरी, फिर
नयनों में साकार खड़ी-सी;
शब्द नहीं, फिर भी स्मृतियों के
तारों की चीत्कार कड़ी-सी;

निद्रा में सपनों-सा चंचल भर देती मुस्कान निरन्तर !

रंगहीन, फिर नवल रश्मि से
रँग देती आशा के अंचल;
गन्धहीन, फिर परम गन्ध से
भर देती मुकुलित उर-पाटल;

नयनों में करुणा-सा कोमल उमड़ा देती धारा छल-छल !

अंगुलि के संकेत नहीं, फिर
मचल रहा आकुल-सा अन्तर;
इंगित नहीं दृगों के, फिर भी
आकर्षण आवेग प्रबलतर;

इस जग में जीवन घबराता उर में उठता ज्वार लयङ्कर !

३८

आज मधु से स्नात रजनी ।
बन रहा बरबस विकल-सी प्यास से में श्रान्त, सजनी !

गा रही उन्माद में भर
पिकी पंचम तान तन्द्रिल;
हो रहा हतधैर्य उर्मिल
स्वप्न का संसार धूमिल;
हो रही मधुकर-कुमारी आज मदिराभ्रान्त, सजनी !
आज मधु से स्नात रजनी ।

मलय का उच्छ्वास सुरभित
स्निग्ध लतिका-गात कंपित—
छू रहा, कलियाँ विकल नव—
अर्द्धविकसित अलि-विचुंबित;
मोहिनी मुस्कान में आमग्न नीरव रात, सजनी !
आज ज्योत्स्ना-स्नात रजनी ।

मुक्त भावासक्त बन्धन,
गीति-अधरों पर प्रकंपन;
किंकिणी-झंकार मुखरित
कंठ-स्वर में नृत्य नूतन;
मोद-सर में खिल रहा प्रिय प्राण का जलजात, सजनी !
आज स्वर्णिम प्रात रजनी ।

३९

कवि ! किसी की याद बनती जा रही है प्यार !

पलक-प्याले में छलकती
अश्रु की विक्षुब्ध मदिरा;
पी जिसे विभ्रांत व्याकुल
मूक अन्त:प्राण मेरा;
सतत बनता जा रहा यह दग्ध जीवन भार !

हृदय-नभ में मुस्कुराता
प्रेम का परिपूर्ण शशधर;
चेतना को बाँध लेता
मधुर प्रिय-सा पाश कसकर;
सफल मेरी जीत बनती जा रही है हार !

मृदुल स्मिति का रूप-सौरभ
ध्यान में उन्माद लाता;
अहरहः स्मृति क्षीण धूमिल
को जगा अवसाद देता;
सतत बनता जा रहा अरमान लघु-सा क्षार !

दर्द दु:सह, किन्तु मीठा,
प्रीति प्यारी, किन्तु बन्धन;

पी रहा आतृप्ति, लेकिन
बढ़ रही मधुप्यास प्रतिक्षण;
इस पार तज मन चाहता, चल पड़ूँ उस पार।

मूक नतमुख, अधर-कंपन,
मूक नयनों के निमंत्रण;
रच रहे दुनिया अनोखी,
छिन रहा संचित मनोधन;
मिट रहा साकार बन-बन स्वप्न का संसार!

४०

अनजान देश का मैं परवाना
केवल एक ज्योति का चुम्बन चाह रहा हूँ मैं दीवाना !

मैं परवाना जलने आया,
जग को जलन बताने आया;
विहँस लगा प्राणों की बाजी
दीपक अमर बनाने आया;
केवल एक शिखा-आलिंगन माँग रहा हूँ मैं मनमाना !

'हँस-हँस जलती रहो' शमा को
मधु-संदेश सुनाने आया;
अपने को आहूत बनाकर
जग में प्यार लुटाने आया;
प्यार-रतन के लिए समुन्दर थाह रहा हूँ मैं मस्ताना !

मेरा पंथ कठोर विषम है
मैं पथ-भ्रांत थका-सा राही,
चरण हमारे चूर हो रहे
मैं उद्‌भ्रांत विकल-सा राही;
आगे खींच रही पर आशा, ध्येय बना मंजिल तक जाना !

विस्वर जीवन-बीन मूक, मृदु
उर के तार शिथिल हो बिखरे;
लुप्त सुकोमल राग-रागिनी,
मौन प्रकृति के नर्त्तन निखरे;
ाह रहा, दृढ़ मधुर प्रेम के पुलकित झंकारों को पाना !

दुख की रेती में चल-चलकर
जीवन-रस को पीने आया;
जलती ज्वाला को अपनाकर
शीतलता बरसाने आया;
ल-जल बस निज शिखा-प्रणय को चाह रहा हूँ मैं परवाना !

कामना

जाग उठी इच्छा ढलती-सी
उर की सोयी-सी आशाएँ खोल रहीं आँखें मलती-सी !

ऊषा की नीलम शय्या पर—
बिखरे हैं जावक-अरुण राग,
धरती के श्यामल अंचल पर—
झर रहे रश्मियों के पराग;
भुवन-भाग्य की मूर्त्तरूप-सी घूम रही पहिया जलती-सी !

उपवन की रंजित क्यारी में
हँसते मन के अनुकूल फूल,
स्मृतियों के सौरभ-भार लिये
उड़ती पाटल की विकल धूल,
ढरतीं शेफाली की आँखें जीवन की छोटी गलती-सी !

खेतों की धानी साड़ी पर
उजड़ी आशा के मूक नयन—
मुस्काते-से, लहराते-से
भर रहे हृदय के भाव-भवन;
मादकता की धूमिल रेखा उगती धीरे-से बलती-सी !

४२

कामना की मधुचिता में प्राण जलता जा रहा है !
वेदना की मृदुलता में
अश्रु के नित फूल खिलते;
यंत्रणा की साधना में
व्यंग्य के शत शूल चुभते;
मूर्च्छना की कुटिलता में गान बलता जा रहा है !

घोर ईर्ष्या के नयन में
स्वार्थ के संदीप जलते,
भावना की चेतना में
कल्पना के सत्य बलते;
कटु घृणा के गहनहिम में प्यार घुलता जा रहा है !

तिमिर पारावार में वे
डूबते कृश-क्षीण तारे
खो रहे अस्तित्व नभ में,
उस चिता के धूम सारे,
मृत्यु से अनजान जग को स्वप्न छलता जा रहा है !

मधुर आशा-देहली पर
ज्योति धीमी टिमटिमाती,
शुष्क उपवन-द्वार पर मन—
मालिनी कुछ गुनगुनाती,
निठुर संध्या के चरण पर दिनमान ढलता जा रहा है !

४३

मन को मनालूँ किस तरह ?
आज मधु-उन्माद को, बोलो, सँभालूँ किस तरह ?

प्रात की मादक हवा से
होश कलियाँ खो रही हैं;
मृदुल वृन्तों के शयन पर
जाग कर भी सो रही हैं;

आज प्रिय मधु-स्वप्न को दृग से निकालूँ किस तरह ?

स्वप्न, मणि-अनमोल, जैसे
भू गगन से आ मिली है;
बन्द पल के पत्र-पुट में
गन्ध घुल-मिल खुल खिली है;

आज रस-उच्छ्वास को उर से उछालूँ किस तरह ?

परसती सुधि-गात को मृदु
साध की उँगली अपरिचित;
विरव साँसों में सिहरती
चेतना विह्वल विचालित;

आज इस मधुमास को मन में बसालूँ किस तरह ?

४४

दूर-दूर ही रहते आये, मिली न धरती कभी गगन से !

बिखरी-सी संध्या की अलकें,
विकल उषा की गीली पलकें;
बोझिल-बोझिल-सी तरुणाई,
शिथिल-शिथिल-सी उर की ललकें;

स्वप्न-स्वप्न ही रहते आये, मिली न जागृति कभी नयन से !

पाल नाव का जीर्ण-शीर्ण-सा
चपल-चपल-सी मन की धारा,
निर्बल साँसें चकित-त्रस्त-सी
उन्मन लहरें, दूर किनारा;

अलग-अलग ही रहते आये, मिला न सर्जन कभी विजन से !

सुरभित शैशव फूल-सुकोमल
अग्नि-शूल बन गई जवानी;
कभी निशानी बची न जिसकी,
मानव की यह कथा पुरानी;

पास-पास ही रहते आये, मिला न जीवन कभी मरण से !

४५

घटा में घुल रहे शोले कहीं चमके, कहीं ठनके !

विभा ने आज शलभों को
छला है खूब जी भर कर;
लगी है चोट आशा को
उठी थी जो लहर बनकर;

तडित् पर मचलते बादल कहीं गरजे, कहीं बरसे !

प्रणय के स्वप्न ने दृग में
महल अपना बनाया है;
मधुर मृदु भाव ने उर में
चमन अपना सजाया है;

बिंधे विह्वल भ्रमर के दल कहीं सरसे, कहीं तरसे !

अनल के कण कि चुन-चुनकर
गगन-आँगन बुहारा है;
उषा ने साज आरति को
अरुण का रथ सँवारा है;

निशा की पीर के पावक कहीं लहके, कहीं दहके !

सुरभि ने साँस में निज को
स्वयं बन्दी बनाया है;

हृदय ने मूक तारों पर
स्वयं गा कुछ सुनाया है;
चपल मन के सजल दामन कहीं उलझे, कहीं सुलझे !

विसुध हो शेष सुधियों ने
मिटा दी है कि सुधि अपनी;
निराशा सो गई है चुप
उनींदी साध ले अपनी;
लता के अधखिले कोंपल, कहीं विकसे, कहीं मुरझे !

४६

मेरा सारा विश्व, किन्तु मैं तेरा एक अकेला हूँ !

बना लिया है मैंने तेरी
साँसों से सम्बन्ध निरन्तर;
सजा लिया है मैंने तेरे
सपनों का संसार मधुरतर;

मेरा सारा शून्य, किन्तु मैं तेरे उर का मेला हूँ !

जोड़ लिया है मैंने तेरे
स्वर का ही संगीत विभामय;
सच, साधी है मैंने तेरी
नीरव विह्वल प्रीति सुधामय;

मेरी सारी पीर, किन्तु मैं तेरी मधु की बेला हूँ !

जला लिया है अपने दृग में
तेरा जीवन-दीप मनोहर;
मिला लिया है तेरी स्मृति में
करुणा-कम्पित सकल चराचर;

मेरा सारा तिमिर, किन्तु मैं तेरा स्वर्ग-सबेरा हूँ !

४७

विश्वास नहीं अब जमता है !
ज्यों बरसाती घन के दृग में तरलोच्छ्वास नहीं थमता है !
व्याधि-भरी विष की आँधी-सी
पीड़ा में 'चित्' नित आकुल है;
आत्म-अपरिचित मनुज अकेला
क्रीड़ा-व्रीड़ा में संकुल है;
'रजो' धूसरित उर-दर्पण में 'सत्' का बिम्ब नहीं रमता है !
आग लगी-सी प्यासी-सी कुछ
चेतना सिहरती, जलती है;
घुल-घुलकर गलती मानवता
चुपचाप मौन हो बलती है;
'तमो' दग्ध मन की काया पर चादर-सी चिपटी ममता है !
विश्वासों की किरण अस्त अब
जीवन का रथ पथविस्मृत है;
संकल्पों से हीन प्राण में
निर्मिति का साधन परिमृत है;
विषम परिस्थिति, वह भी पंकिल, भ्रांत व्यस्त सबकी समता है !
विश्वास नहीं अब जमता है !

४८

मेरे जीवन की संध्या में धीरे-से तुम आ जाना !

खाली हो जब कोष, मधुर मधु चू जाये,
यौवन हो जब जीर्ण, जरा चुप छू जाये;
मेरे प्राणों के मरघट में साँसों को सुलगा जाना !

रीता हो जब राग, नयन में सावन घन,
फीके हों सब रंग, सुमन का उजड़ा मन;
मेरे जीवन की क्यारी में काँटों को उकसा जाना !

ढीला हो विश्वास, प्रणय का पथ धूमिल,
उद्वेलित हों प्राण, हृदय को सरि फेनिल;
मेरे सपनों की धारा में लहरों को उमगा जाना !

बुझता हो जब दीप, तिमिर लौ पी जाये,
आया हो अभिशाप, मरण-वर भी आये;
मेरे सूने-से नयनों में चुपके तुम मुस्का जाना !

कुचली-मसली पीर, टीस में आशा कसके,
बढ़ती हो जब प्यास, कंठ में लू लहके;
जलती कानों की प्याली में स्वर-मदिरा ढुलका जाना !

४९

आज मन उन्मन हमारा !

नील नभ में किस सलज ने सघन घन कुन्तल पसारा ?

प्राण में प्रस्पन्द बनकर
रूप अनुपम आ बसा है;
वेदना की बीन के मृदु
तार को किसने कसा है ?

आ चढ़ी है कौन उर पर श्वास के सोपान द्वारा ?

स्वर्ग की मुस्कान लेकर
कौन उतरी है गगन पर ?
तोड़कर सीमा पलक की
क्यों उमड़ आया नयन-सर ?

घोलकर किसने पिलाया याद में उन्माद प्यारा ?

नवल दल परिधानवाली
भूमि के क्यों रोम पुलके ?
हुलसती पत्रावली पर
स्वेद के क्यों विन्दु ढुलके ?

गगन-पनघट से कि चुप-चुप कर दिया किसने इशारा ?

५०

कभी जब मन मचलता है !

मधुर-सी याद का सौरभ लहर क्षण-क्षण बदलता है !

गगन के स्याह अधरों पर
अरुण-सी रेख खिंच जाती;
पवन की फूँक से घन-सी–
पलक शशि की कि मिंच जाती;

धरा का, छाँह का झीना वसन रह-रह फिसलता है !

उदधि की साँस-सी चिन्ता–
तरंगें तेज हो जातीं;
निशा के अश्रु-सी पीड़ा
सु-मन-दल सेज सो जाती;

दिशाओं में उसासों की भरी नीरव विकलता है !

सितारों की पुलक लेकर,
उषा के गाल शरमाते;
लता के एक इंगित पर
नयन के फूल झर जाते;

किरण की प्यास में मन के चरण का दीप बलता है !

५१

प्रेम सघन घन-सा लहराया !
सपने जो रीते सो बीते,
अब तो भरे उभर कर आये;
नीरव जो थे तार कि उसमें
गीत मुखर बन घन-से छाये;
इच्छा का उच्छ्वास नयन में बनकर काजल-सा कजराया !

सजल सघन सावन के घन की
उचटी नींद, खुला शशि-लोचन;
बिजली मे रह-रह मुस्कायी
कुछ मीठी-सी स्मृतियाँ उन्मन;
आशा का विश्वास प्राण में बनकर पुलक-ललक-सा आया !

रोम-रोम में प्रश्न विकल-सा,
उत्तर में थीं मूक दिशाएँ;
कुछ रहस्य, कुछ उलझन लेकर
बीत रहे थे दिवस, निशाएँ;
प्राणों का उल्लास मरण में धीरे सिमिट-सिमिट लहराया !

५२

रूपसी ! सौन्दर्य में अपनत्व आभासित निरन्तर !

धन्य है मिट्टी धरा की
उत्स जो सौन्दर्य का है;
चूम लो, तुम प्यार कर लो,
ज्योति की जो वर्त्तिका है;

मृत्तिका-माधुर्य में देवत्व आप्यायित निरन्तर !

रूप है वरदान जग का,
प्राण का परिमल सुकोमल;
नयन की पावन सुधा-सी
धूल का धन धवल उज्ज्वल;

रूप का आधार यह तन धूल से पूरित निरन्तर !

मधुर मधुमय रूप जग का
धूल की नव कल्पना है;
मोह धरती का, युगों से
धूल की यह अर्चना है;

रूप की सत्ता प्रकृति यह धूल से निर्मित निरन्तर !

प्राण का है बीज मिट्टी,
रूप की जननी चिरन्तन;
देह का यह नाश पल-पल
क्षार की अर्चा सनातन;

रूप की ही साधना में जग विकल तृष्णित निरन्तर !

५३

प्राण में वरदान भर लो,
कंठ में मधुगान भर लो;
चित्त में अभिनव अनोखी रागिनी को तान भर लो !
विश्व का उपहास तेरा
क्या भला वह कर सकेगा ?
विश्व का अभिशाप तुझसे
क्या भला वह ले सकेगा ?
लो, उठो, यौवन-उषा में प्राण का अरमान भर लो !
नील नभ का शून्य दुस्तर,
किन्तु, क्या तुम थक सकोगे ?
क्रूर वज्रनिनाद से डर,
किन्तु, क्या तुम रुक सकोगे ?
गीत में अपनी व्यथा को चुप छिपा अपमान वर लो !
प्यार दे दो, किन्तु अपने
दर्द को उर में सँभालो,
मुस्कुरा कर वेदना को
वीरता से बस बचा लो;
पीर में अपने हृदय का चिर अमिट अभिमान भर लो !
धधकते अंगार-पथ पर
भावना क्या जल सकेगी ?
दुःख से मेघिल गगन में
गीति बिजली बन हँसेगी !
निज चपल चंचल चरण में स्वर्ग का अभियान भर लो !

५४

छू-छू जाता है प्राणों को एक मृदुल-सा चंचल अंचल !

पूर्ण अपरिचित मुस्कानों से
भरी जा रहीं दसो दिशाएँ,
कान्तिमती काया-वल्ली के
फूलों से हँस रहीं निशाएँ,

चू-चू जाता है पलकों में एक तरल-सा परिमल पल-पल !

एक नया-सा पुलक-भार से
दबा जा रहा उर-प्रस्पंदन,
एक नई-सी जिज्ञासा में
कसक रहा है अन्तर्बन्धन;

धू-धू जलता है स्मृतियों में एक सरल-सा सपना विह्वल !

एक विकलता-भरी प्रतीक्षा
देती आशा-भरे निमत्रण,
एक प्यास की साँस-फाँस में
उलझ रहा है चेतन जीवन;

हू-हू करता मन-सरिता में एक विकल-सा लहरों का दल ।

५५

तिमिर-बीच तारे मुसकाते !
तूफानों में चल देने को अन्तःपद की गति उकसाते !

यौवन की आँधी में प्रतिपल
जलता जाता जीवन-दीपक;
छलता जाता नई ज्योति बन
मृगतृष्णा का पत्थर चकमक;

क्षण भर की तन्द्रा में मीठे सपने कितने आते-जाते !

महाकाल की अथक दौड़ में
आशाएँ तो थक-थक जातीं;
नई उमंगें, तृष्णानल की
ज्वालाओं में पक-पक जातीं;

पल भर की दुनिया में प्रतिपल अपने कितने आ दुलराते ?

सूने नभ के आँगन से नित
होता बन्धन का आवाहन;
निशिदिन किसकी स्मृति में रजनी
करती रहती वारि-विमोचन ?

कँपते फूलों के अधरों में कितने सौरभ छिपते जाते !

मलयजबाला की प्याली में,
ढलती जाती बेसुध हाला;
कौन देखता, उस पंथी के
पथ का काँटा, पग का छाला ?

सागर की चंचल लहरों में कितने बुद्बुद मिटते जाते !

५६

विश्वास खोजता चलता हूँ !
पता नहीं, मुझको जग छलता या मैं ही जग को छलता हूँ ?

तिमिर-पंथ पर भटक रहा है
शूलित-कीलित-सा नवयौवन;
आतप-म्लान मृदुल किसलय-सा
सूख रहा भावों का उपवन;
पता नहीं, मुझसे जग जलता या मैं ही जग से जलता हूँ ?

चंचल प्राणों के अंचल में
युग-युग की पीड़ा पलती है;
पल-पल मोल चुकानेवाले
जीवन की व्रीड़ा खलती है;
पता नहीं, मुझसे जग पलता या मैं ही जग से पलता हूँ ?

नीरव वीणा में सूना-सा
काँप रहा दर्दीला लघु स्वर;
दग्ध हृदय में तरल तृषा का
बहा जा रहा झर-झर निर्झर;
पता नहीं, मुझसे युग ढलता या मैं ही युग से ढलता हूँ ?

५७

पीड़ा को सहला मत देना !

अन्तस्तल में पीड़ा प्रतिपल
बनती जाती प्रिय से प्रियतर;
दुख से जितनी रुचि है मन को
सुख से उतनी अरुचि निरन्तर;
मेरी तीखी आतुरता को कभी भूल बहला मत देना !

दुख से परिचय बहुत पुराना,
पल-पल आँसू बनकर आता;
चिन्ता-दूती भेज-भेज कर
क्षण-क्षण अपनी याद दिलाता;
कभी भूल दुख की निन्दा को होठों से कहला मत देना !

दुख से मन का नित अपनापन
जीवन-धन वह स्वाभिमान का,
शीतल-सा मरहम का लेपन
अभिभव-अनुभव-दग्ध प्राण का;
कभी भूल सुख के हित दृग को आँसू से नहला मत देना !

५८

जीने का अधिकार चाहता !
फटती-सी ममता-चादर के सीने का अधिकार चाहता !

मेरा सर्वस्व बनी पीड़ा,
खिलती जिसमें जीवन-व्रीड़ा;
सरल-तरल करुणा के कर से—
सुरभित, उच्छल जीवन-रस के पीने का अधिकार चाहता !

मिटता-सा अस्तित्व प्रतिक्षण,
लुटता-सा भावों का उपवन;
दर्द-भरी भींगीं पलकों से—
सिंचित, प्राणित यौवन-तरु के खिलने का अधिकार चाहता !

चिन्ता की ज्योति घुली जाती,
आशा की गीति धुली जाती;
अरुण-तरुण-सी अमर किरण से—
स्वप्न-सदन के अनुरंजित हो जाने का अधिकार चाहता !

५९

उस रूप की महिमा कहाँ है ?

हृदय जिस पर मुग्ध-बेसुध,
भाव बरबस बिक गये हैं;
कामनाएँ सलज सालस,
प्राण परवश थक गये हैं;
लीन जो निःसीम में, उस प्यार की प्रतिमा कहाँ है ?

हृदय-वीणा का मधुर—
झंकार नीरव-सा नयन में;
चिर प्रतीक्षा बन गई अब
साधना साकार मन में;
सूक्ष्म नित जो स्वप्न में, उस प्राण की गरिमा कहाँ है ?

अथक आशा की अकेली
रात जिस पर ढल गई है;
तड़पती नभ-तारिकाएँ
भू-रुदन बन घुल गई हैं;
चर-अचर में छा रही, उस पीर की लघिमा कहाँ है ?

६०

मैं जिऊँगा, इसलिए मुस्कान दे दो !

मान या अपमान ही हो,
है नहीं पर्वाह इसकी,
शाप या वरदान ही हो,
है नहीं कुछ चाह जी की;
मैं जिऊँगा, इसलिए मुस्कान दे दो !

गरल हो या मधुर मधु हो,
जाँच की आदत नहीं है,
जीत हो या हार ही हो,
सोचने की लत नहीं है;
मैं पिऊँगा, इसलिए कुछ पान दे दो !

तीर हो या धार तीखी,
जानता बहना निरन्तर,
प्यार हो या पीर चोखी,
गा रहा मधुगान जी-भर;
मैं चलूँगा, पन्थ का अभिमान दे दो !

६१

राही बनना चाह रहा, पर राह नहीं मैं पाता हूँ !

अन्तस् में इच्छा जलती है,
पग-पग में गति की व्याकुलता;
खींचातानी है जीवन में
दृग में लाचारी चंचलता;

तिरने को चाह रहा अविरत, पर थाह नहीं मैं पाता हूँ !

आशा और नियति में पल-पल
महाद्वन्द्व चलता रहता है;
भौतिक पीड़ा में मानस का
देवालय जलता रहता है;

सुस्ता कर बात समझने को छाँह नहीं मैं पाता हूँ !

कितना छोटा मानव-जीवन,
उस पर यह भार असह कितना ?
पानी में रेखा-सा यौवन,
उस पर अभिचार असह कितना ?

सपनों में ज्वार उठाने का उत्साह नहीं मैं पाता हूँ !

६२

क्षुब्ध अन्तर्दीप भावों के तिमिर पर !

उठ रहा तूफान उर में हर पहर पर,
डगमगाती साँस मन की हर लहर पर;
काँपता पतवार, फटता पाल जर्जर,
किन्तु, बैठा नाव पर नाविक सँभल कर;
चपल अन्तःपद कि काँटों की डगर पर !
क्षुब्ध अन्तर्दीप भावों के तिमिर पर !

उबलता अभिमान आशा के ज्वलन पर,
चेतना स्पंदित धरा की हर चलन पर;
ज्ञान का उन्मेष अन्तस् के क्षितिज पर,
सतत है गतिमान् मन का यान द्रुततर;
क्रुद्ध दारुण दर्द घावों के जिगर पर !
क्षुब्ध अन्तर्दीप भावों के तिमिर पर !

घुमड़ती सावन-घटा दृग की अटा पर,
कौंधती स्मृति की तड़ित् जीवन-जटा पर;
डोलतीं लहरें तरल, चंचल चपल सर,
खोलती आँखें उषा अरुणिम छटा पर;
विकल मन की साध बाधा के अधर पर !
क्षुब्ध अन्तर्दीप भावों के तिमिर पर !

६३

रूप, तेरा रूप, रूपसि !
चूमकर मेरे नयन कुछ झूम लेना चाहते हैं !

बाँध लेगी पलक जब, तब मृत्यु क्या, तूफान क्या है ?
साध लेगी साँस जब, तब पीर क्या, पवमान क्या है ?
प्राण पारावार जब, तब तीर क्या, खरधार क्या है ?
'अस्ति' होगा 'नास्ति' जब, तब मान क्या, अपमान क्या है ?

रूप-भू पर प्राण-मन कुछ घूम लेना चाहते हैं !

रूप-सागर-मग्न जब, तब नाश क्या, उद्धार क्या है ?
स्वप्न बुद्बुद, मन लहर जब, प्यार क्या, अभिसार क्या है ?
नव-विभा-प्रतिभात कण-कण, अन्ध क्या, द्युतिमान् क्या है ?
प्राण-तन में जब समाया, शून्य क्या, घरबार क्या है ?

ज्वलित उर के भाव अब निर्धूम होना चाहते हैं !

आत्म-अर्पण जब कि होगा, शान क्या, अभिमान क्या है ?
द्वित्व का एकत्व जब, तब दान क्या, प्रतिदान क्या है ?
साथ जब संग्राम में, तब हार क्या, उपहार क्या है ?
धूल होगी अमर जब, तब रुदन क्या, मधुगान क्या है ?

प्राण गा-हँस-नाच कुछ क्षण झूम लेना चाहते हैं !
झूमकर मेरे नयन, बस चूम लेना चाहते हैं !
रूप, तेरा रूप, रूपसि !

६४

जबतक तेरी याद रहेगी
मैं न मानता हार, जवानी सब सह लेगी !

बनकर तेरा रूप भूप-सा
मन पर सदा करेगा शासन;
शासित होकर ही शासक को
जान सकेगा मेरा जीवन;
मैं कि जानता प्यार, कि आँखें सब कह दगी !

भय क्या, शासन से टूटी-सी
जुट जायँ जिन्दगी की कड़ियाँ;
भय क्या, अगर नियन्त्रण से फिर
झरें विनोद की फुलझड़ियाँ;
मैं कि जानता ज्वार, रवानी खुद बह लेगी !

जाओगी तुम भूल, तभी तो
याद कि मेरी जग जायेगी;
होगी जब तुम दूर, तभी तो
आशा में हलचल आयेगी;
मैं न मानता खार, मौत मगन मन रह लेगी !

६५

तन-मन मेरे दौड़ रहे हैं !

पहुँचा है आमंत्रण लेकर
मीठा-सा वातास मलय का;
कम्पित है कदली-किसलय-सा
उत्कूलित उच्छ्वास हृदय का;
तिल-तिल कर पथ की दूरी को मेरे लोचन जोड़ रहे हैं !

अधनींदी कामना जगी है
चाह रही मनुहार निरंतर;
पीर अभी चुप हो पाई थी,
उभर उठी कुछ याद सिहर कर;
उन्मन-से ये चरण, चाल से बाधा-बन्धन तोड़ रहे हैं !

बहिर्द्वार पर जलती होगी
ज्योति प्रतीक्षा की चिर झिलमिल;
अंचल-दल पर ढलते होंगे
आशाओं के अश्रु अनाविल;
प्रस्पन्दित मन-प्राण प्यार में मरण-भीति को छोड़ रहे हैं !

६६

किसे सुनाऊँ अपना निश्चय !
किसे दुःख या सुख होगा, सुनकर मेरी विजय-पराजय !

गला घोंट देता है रह-रह
संकोच सकुचती भाषा का;
किसलय नोंच-नोंच लेता है
वैफल्य पनपती आशा का;

किसे जरूरत है पाने की संतप्त जवानी का परिचय !

अविश्वास है, आशंका है,
मानव पर दानव हावी है;
भय से कंपित भाग्य निरंतर,
क्या जाने, क्या-क्या भावी है;

किसको फुर्सत है दुनिया में, करते हैं सब अपना अभिनय !

सरल स्नेह की भावाकुलता
बँधी बेबसी-जंजीरों में;
नीरव हाहाकार भरा है
आँखों के पल-प्राचीरों में;

किसे पता, इस महासिंधु में होता जाता है विन्दु-विलय !

अन्धकार की घोर प्रतीक्षा,
जबतक रस-दीपक जलता है;
कि एक चिरन्तन संस्कार में—
जकड़ा, परवाना पलता है;

कौन देखता मनु-पुत्रों के नित विकास का दारुण अपचय !
किसे सुनाऊँ अपना निश्चय !

६७

सौ बार लूँगा जन्म तेरी साधना को !

हर बार होगा क्षार तन आराधना में,
हर बार होंगे प्राण बलि पूजार्चना में;
हर जन्म बीतेगा कि ध्यान-उपासना में
हर जन्म होगा प्यार की परिकल्पना में;

हर बार जाऊँगा सँजोये कामना को !
सौ बार लूँगा जन्म तेरी साधना को !

सौभाग्य-पथ पर लाख सर मारे निराशा
पर, न मिट पायेगी कभी अन्तःपिपासा;
नित्य खिलती जायगी (नव) आशाभिलाषा,
मृदु भाव पायेंगे मधुर सुकुमार भाषा;

हर बार न्यौछावर करूँगा याचना को !
सौ बार लूँगा जन्म तेरी साधना को !

हर श्वास में बस प्यार का उच्छ्वास उन्मन,
हर स्वप्न में बस रूप का आवास नूतन;
उर-नगर की हर डगर (औ') हर देहली पर
तरल तप के दीप (का) ज्योति-विकास अनुक्षण;

हर बार आऊँगा जुगाये भावना को !
सौ बार लूँगा जन्म तेरी साधना को !

६८

ऐसा उन्माद नहीं लूँगा, जिसमें तेरी याद न हो !

मैं तेरी वह उग्र साधना,
जिसमें मुखर मरण मुस्काता;
मैं तेरी वह व्यग्र वेदना,
जिसमें प्रणय पुलक बन आता;

ऐसा अवसाद नहीं लूँगा, जिसमें तेरी साध न हो !

मैं तेरा वह जलता यौवन,
जिसके कन्धे पर सारा जग;
मैं तेरा वह बलता जीवन,
जिसका पन्थ अमर, पग डगमग;

ऐसा परिवाद नहीं लूँगा, जिसमें तेरा साथ न हो !

मैं हूँ तेरा वह सावन-घन,
जिसमें उर के स्वर लहराते;
मैं हूँ तेरा वह प्रस्पन्दन,
जिससे अश्म-अधर हिल जाते;

ऐसा आह्लाद नहीं लूँगा, जिसमें तेरी दाद न हो !

६९

रूप बन जाये अमर वर !
प्यास मेरी, रूप-ज्वाला, चाहती जीना निरन्तर !

रूप वह, जो शूल में खिल
फूल-सा नित मुस्कुराता;
रूप वह, जो धूल में मिल
हीर-सा नित झिलमिलाता;
साँस मेरी साधना में चाहती जीना निरन्तर !

रूप के उपवास में ही
नित्य हो सपना सबेरा;
रूप को ले याद उर में
प्राण गाये नित अकेला;
पास मेरे ही मुखर हो वेदना-वीणा निरन्तर !

चेतना की छाँह में नित
रूप हो साकार, सस्वर;
कामना की राह पर वह
प्राण को ले बाँह में भर;
आश हो आकल्प विधि की तूलिका-लीना निरन्तर !

७०

युगों के बाद तुम आये !
हृदय के तार में प्रिय ! तुम मधुर स्वर बन कि लहराये !

सजल सालस नयन अपलक
रहे जल ज्योति में कब से ?
प्रतीक्षा में सधी साँसें
न जाने, चल रहीं कब से ?

गगन में श्याम घन-सा तुम हृदय में प्यार बन छाये !

उनींदे स्वप्न स्मृतियों को
जुगाते आ रहे कब से ?
विकल मन जोहते आये
तुम्हारी साध युग-युग से !

मलय वातास-सा प्रिय ! तुम सुरभि-घट आज भर लाये !

उमड़ती भाव-लहरों पर
पुलक नित तिर रही कब से ?
उमगते स्नेह बन्धन में
न जाने, घिर रहे कब से ?

सलिल में वीचि-सा प्रिय तुम गिरा में अर्थ बन गाये !

७१

तिमिर में ज्योति बन आई !

मिटी-सी साँस में उर की
युगों की साधना जागी;
घनी थी पीर मन में जो
दबाकर पैर चुप भागी;
अमा की दग्ध काया पर कि तुम मधुचाँद बन छाई !

चपल-सी चेतना अमलिन
फँसी जो ग्लानि-दलदल में;
गगन से भूमि पर उतरी,
हँसी, ज्यों रंग शतदल में;
व्यथा से विद्ध मानस में कि तुम मधुप्यार-सी भाई !

उषा-सी चूम व्योमाधर
धरा पर राग बन आई;
कि तन्द्रा-तार पर धीरे
मधुर ज्यों मीड़ लहराई !
कथा की याद में उलझे नयन में लाज मुस्काई !

७२

आज रात मेरी मनमानी !

हँसा चाँद नभ में, धरती पर सलज चाँदनी शरमाई,
उषा अरुण की सिन्दूरी-सी अलकों पर जा भरमाई;
चढ़कर पवन-पंख पर सौरभ-सुधा हृदय में ढल आई,
सहलाया शशि ने हौले से कुमुद मृदुल-सी मुस्काई;

तम-पट में सिमटो-सकुचाई रैन चली चुप अनजानी !

जगी याद, प्राणों में परिमल घुल-घुलकर भर-भर आया,
उठी प्यास चिन्ता-रेती पर, पीड़ा ने गीत सुनाया;
हुई सरस परवश-सी ममता, समता का स्वर लहराया,
लहर-लहरने पहर-पहर पर अन्तर में स्वप्न सजाया;

मुँदे-खुले नयनों में रह-रह उमगी मन की मधुरानी !

तन्द्रिल दीप, भाव-जल चंचल, सावन घन-सा मन पावन,
द्रवित स्नेह के पंक-अंक में जीवन-शतदल की फिसलन;
ज्योति-लोक की एक किरण-सी फैल गई, ज्यों अभिलाषा,
लगी न जाने कब आ मन में एक कुतूहल-जिज्ञासा;

सकल चेतना विकल, मुकुल में बँधी सुरभि-सी कल्याणी !

७३

नीरव क्षण का श्लथ सूनापन !
अपने ही दुर्वह भारों से दबा जा रहा आकुल जीवन !

करता है उपहास सुखों का
मेरे दुःखों का चिर वैभव;
सूनी-सी यात्रा के पथ पर
श्रान्त पथिक-सा नीरस अनुभव;
अपनी ही दुर्दम दावा से जला जा रहा उन्मन यौवन !

विकल प्रतीक्षा में निष्ठुर-सा
एक अभाव निरन्तर छलता,
द्वन्द्विल आशा के कम्पन में
नियति-दुराव निरन्तर खलता;
अपने ही दुःसह शापों से ढला जा रहा श्यामल सावन !

काल-दीप में जलती जाती
अगणित स्नेहिल आशा-बाती;
उच्छ्वासों में चली पिघलती
हँसते ताराओं की पाँती;
अपने ही दुर्गम बन्धन से विवश हो रहा स्वप्निल चेतन !

नीरव साधों की साँसों में
सिहर रहा धीमा प्रस्पन्दन;
अवसादों से विह्वल उर में
अन्तहीन चिन्ता ! उन्मंथन !
अपनी ही दुस्तर पीड़ा में बहा जा रहा निर्झर निर्जन !
नीरव क्षण का श्लथ सूनापन !

घूँघट में शरमाता यौवन !
साँसों में लहराते सर-सर सपने मीठे चंचल उन्मन !

झूम रही मन-हरियाली में
अंग-अंग की कोमल डाली;
मस्त हो रही पल-परिमल में
आशा की कलियाँ मतवाली;
प्यार-मधुप नस-नस में करते धीरे-धीरे वीणा-वादन !

भाव-लता झकझोर रहे वे—
पुलकित प्राण-पवन रस-गीले;
चुभते जाते रोम-रोम में—
स्मृति के गीत तरल दर्दीले;
कलित कामना-कोयल से कंपित बहिरन्तः काया-कानन !

प्रकट, निकटतर आती जाती,
मुस्काती-सी छविमय छाया;
मिटा रही मेरी सत्ता को
मोहमयी ममता की माया;
मिटते तन-मन में आलोकित अद्‌भुत, अनुपम, नूतन जीवन !

चरण चंचल हो उठे हैं, प्राण व्याकुल हो रहा है !

आज नभ संकेत-उडु से
विमन मन को है बुलाता;
शून्य नीरव यामिनी में
चाँद छल से है सुलाता;

चित्त उन्मन हो उठा, अब गान विह्वल हो रहा है !

रुचिर ममता मोह बनकर
बाँधती ही जा रही है;
नयन की वह मलिन भाषा
मूक रोती जा रही है;

भाव चिन्तित हो उठे हैं, स्नेह भारिल हो रहा है !

शिथिल नस-नस में निरन्तर
विपुल जड़िमा छा रही है,
एक मीठी-सी जलन में
वचन-गरिमा आ रही है;

अधर चंचल हो उठे हैं, शब्द निश्चल हो रहा है !

७६

भोले-भाले पागल-पागल
मीठे सपने बनकर आये ये दल के दल काले बादल !

जलती धरती की छाती पर
नाच उठी शीतल मृदु छाया;
वियोगिनी ने छाती पर से
ज्यों चंचल अंचल सरकाया;
गगन-परी के नील दृगों में लहराये रस-गीले काजल !

द्रुततर और विलम्बित गति से
लालस-सालस-सी पुरवैया—
बहती उलझ-उलझ सागर से,
लहरों पर लहराती नैया;
तरु-तरु के किसलय-किसलय पर छायी आभा श्यामल-श्यामल !

सप्तरंगिणी उभर उठी ज्यों
चिन्ता की गहरी-सी रेखा;
फटी धरा के विकल वक्ष पर
बूँदें ज्यों मरहम की लेखा;
तृण-तृण के सूखे अधरों पर उमगी रस की धारा उच्छल !

आहत जीवन की आशा-सी
उगने की इच्छा कण-कण में;
स्मृतियों की व्याकुल सिहरन-सी
घन-घन की सन-सन मन-मन में;
बदला, भाग्य-रेख-सी ज्वाला का तृष्णिल इतिहास-धरातल !

कलित कुटज के मृदुल वृन्त पर
विहँस उठीं आँसू की कलियाँ;
अलका की सुरभित अलकों पर
गूँज उठीं आकुल-सी अलियाँ;
चौंक उठा अभिशप्त यक्ष फिर 'ओ बरसा के पहले बादल !'

७७

स्मृतियों के हार बने तारे !

निकले जो अम्बर-सागर से,
ज्योति-लोक से प्रकटे, विहँसे;
नयनों को छूकर चमक उठे,
नयनों के नूर बने तारे !
स्मृतियों के हार बने तारे !

व्याकुल भावों की भीड़ लिये,
प्राणों में तीखी पीर लिये;
जो एक खण्ड भी दमक उठा,
कितने ही प्यार बने तारे !
स्मृतियों के हार बने तारे !

तारों की तुलना, क्या होती ?
तारे हैं दुख-सुख के मोती;
प्रणय-सूत्र में गये पिरोये,
रजनी-उपहार बने तारे !
स्मृतियों के हार बने तारे !

अमृतकण बरसा दो शशधर !

दु:सह ज्वाला की लपटों में
जलता इस जगती का यौवन;
धरा-व्योम के अन्तराल में
गूँज रहा करुणा का क्रन्दन;
दश शत कर के सुधा-स्पर्श से शीतलता सरसा दो हिमकर !

भड़क उठी है दग्ध हृदय में
भग्न प्रणय की शिखा भयंकर,
विफल प्रेयसी-चिता काँपती
विजन विपिन में सिहर-सिहरकर;
बुझी हुई आशा-विभूति पर क्षीण ज्योति को जला कलाधर !

जर्जर उर की अश्रुधार में
प्रवहमान संचित मानस-धन,
गिरी जवनिका, आज शेष सब—
अभिनय-सुन्दर रुचिकर जीवन;
मिटती-सी स्मृतियों पर स्मित की रेखा एक उगा दो हँसकर !

मैं कभी न गाये जानेवाले गीत कि गाये जाता हूँ !

वे गीत मधुर, प्रिय होते हैं
जो सुने-सुनाये जाते हैं;
किन्तु कभी जो सुने न जाते
वे मधुर-मधुरतम होते हैं;

मैं कभी न मिलनेवालों ही में प्यार जगाये जाता हूँ !

वह प्यार कि चोखा होता है
जो मिलन-विरह में पलता है,
सदा प्रतीक्षा में जो जलता
वह प्यार अनोखा होता है;

मैं कभी न खिलनेवालों से अनुराग लगाये जाता हूँ !

जिसमें सुख है और दुःख है
वह जीवन प्यारा-मीठा है;
छूते तक न कभी जिसको सुख
वह जीवन सबसे मीठा है;

मैं सदा हारनेवालों से सहचार बढ़ाये जाता हूँ !

जिसे देखता और दिखाता
वह रूप विभामय, आभामय;
पर जो न कभी देखा जाता
वह रूप प्राणमय, जीवनमय;

मैं कभी न दिखनेवालों की तस्वीर उगाये जाता हूँ !

स्मृतियों का दीप जला देना !

सन्देश-पवन से क्षण भर के परिचय के पात हिला देना !

उर में इच्छा की अँगड़ाई,
भावों के मंथन-उन्मंथन;
पग-पग पर पीड़ा बंधन की,
उत्कूलित उद्वेलित उलझन;

पीड़ा के सहचर बनने के प्रण की मृदु याद दिला देना !

सपनों की सत्य कहानी में
जी उठता नाता युग-युग का;
नद-निर्झर, पर्वत-कानन में
हँसता रवि तेरी रग-रग का;

विस्मृति के सूने मरघट में चिन्ता की चिता जिला देना !

जग की विकट भ्रान्ति-लहरों में
भावना-भ्रान्ति, सच, सम्भव है;
पर मेरे साधक जीवन का,
तेरी उपासना, वैभव है;

शंकाकुल मन के उपवन में विश्वास-प्रसून खिला देना !

वेदना

८१

वेदना नित फलवती हो !

ज्वाल-सी धधके जवानी, किन्तु ज्वाला जलवती हो !

उर-गगन में मेघ-से जब
घुमड़ते हों भाव कोमल;
मन-नयन में ज्वार-से जब
उमड़ते हों स्वप्न चंचल;

फूल-सी बिखरे कहानी, लौह-प्रतिमा रसवती हो !

निशि अमावस-व्योम-सी नित
अचल तप तपती प्रतीक्षा;
काल-सा निष्ठुर परीक्षक
चाहता लेना परीक्षा;

धूल में निखरे निशानी, मृत्यु मधुमय द्युतिमती हो !

प्यार हो परिपूर्ण निशिदिन,
मोतियों के अश्रुकण हों;
रूप की ममता मधुरतर
सरस सावन-सी सघन हो;

विषमयी-सी वासना में कामना नव मधुमती हो !

वेदना नित फलवती हो !

८२

खोल दो तुम पीड़ा का द्वार !

मिट गया भावों का उन्माद,
हो उठा प्रकट अलख अवसाद;
शिथिल-सी पड़ी मृदुल अभिलाष,
नयनों का नीरव अश्रु-हास—
बन गया शतधा अन्तर्धार !
खोल दो तुम पीड़ा का द्वार !

सामने जीवन-रेगिस्तान
दिखलाता अपनी जलन-शान;
मूर्च्छित-सा सुन्दर स्वाभिमान,
निश्चल-सा चिन्ता का श्मशान—
इंगित करता, लो ज्वलित प्यार !
खोल दो तुम पीड़ा का द्वार !

पराजित पीड़ा का उपहार
सजा है जग के इस-उस पार;
जीर्ण जीवन-वीणा के तार,
भरे कर्कश विस्वर झंकार;
विजय बनती चुभती-सी हार !
खोल दो तुम पीड़ा का द्वार !

८३

पीर है सचमुच मृदुलतम प्यार का प्रतिरूप !

पीर, नीरव साधना है,
पीर, मन-आराधना है;
पीर, योगोपासना-तप,
वह कि जिसमें क्षार होती वासना विद्रूप !

पीर, सुख का स्रोत, सच है,
पीर, मधु का स्रोत, सच है;
पीर, ज्योतिःस्रोत अभिनव,
वह कि जिसमें निखर उठता प्रणय-पथ सद्रूप !

पीर, है शिव-सत्य-सुन्दर,
पीर, है संगीत का स्वर,
पीर, सत्, चित्, ब्रह्म रसमय,
वह कि जिसमें भासता आनन्द का शुभ रूप !

पीर, तो तीखा गरल है,
पीर, मधु आसव तरल है,
पीर, उन्मन मधुर जीवन,
वह कि जिसमें मग्न सारा विश्व का गुरु रूप !

८४

संसृति का मिलता नहीं कूल !

जीवन का सागर लहर रहा,
है जलद मरण का घहर रहा;
उर-नभ को जलमय करने को
तृष्णा का वाड़व हहर रहा;
बहती, पीड़ा के नयनों से आँसू बन-बन कर विवश भूल !

भूतल पर चलते स्वप्न नये,
जो छूट गये, जो बीत गये;
ले अतीत की कसक क्रूर
हिलतीं साँसें कुछ भाव लिये;
उड़ती, अन्तस् के आँगन में आशा की तपती विकल धूल !

नीरव-सी आँधी मचल रही,
चिर मूक प्रतीक्षा उबल रही;
दुख के दंशन से सिहर-सिहर
धीरज की सीमा बदल रही;
मुरझाते, चिन्ता-ज्वाला से इच्छा के अगणित मृदुल फूल !

८५

यह विराग पहला, जीवन का !

तृष्णा की संध्या-ऊषा में उदय-अस्त यह जन्म-मरण का !

सूनी हरियाली लहराती
श्लथ उदास-से सैकत तट पर;
बीती की तीखी स्मृतियों का
अनुवर्त्तन नीरस मन-पट पर;

निठुर नियति का घन-शशि-सा यह सतत खेल उत्थान-पतन का !

पश्चिम की कंपित किरणों में
पीली-सी पीड़ा हँसती-सी;
हाहाकार-भरे अन्तस् में
धुँधली-सी रेखा बनती-सी;

आशा की शीतल छाया में परिवर्त्तन यह आगमन-गमन का !

नीरव रजनी, दीपोत्सव में
नित घूंट अश्रु के पीती-सी,
जलती जीवन-गोधूली में
दुनिया की महफिल उठती-सी;

उड़ते क्षारों की कटुता में यह उसास पीड़ित यौवन का !

८६

मन की पीड़ा खो न सकूँगा !

शून्य हृदय के शिला-भार को पल भर भी मैं ढो न सकूँगा !

समय-रेत पर सदा अकेला
सु-स्मृति का इतिहास लिखूँगा;
अमर प्रतीक्षा के पावक की
तीखी-सी नित प्यास सहूँगा;

ज्वलित निराशा-लवणोदधि में कुचली आशा धो न सकूँगा !

पीड़ा से गीली धरती पर
श्रद्धा का उच्छ्वास गिनूँगा,
नयन मूँद कर निठुर नियति का
गरल-कुटिल उपहास पियूँगा;

वरदानों के विपुल विभव में शापित प्यार डुबो न सकूँगा !

इच्छाओं की लाश, धूल के
तुच्छ मोल पर तौल सकूँगा;
प्रश्नों के पूछे जाने पर,
मृत्यु-हेतु, मुख खोल सकूँगा;

चिन्ता-हीन विश्व का मैं तो कभी नियन्ता हो न सकूँगा !

मन की पीड़ा खो न सकूँगा !

८७

पीड़ा की पहचान न देना !

धारा में चंचल नैया को माँझी ! साहस से हँस खेना !

आहत आशा की लाश अगर
रज के मोल बिके, बिक जाये;
उगती-सी उर की अभिलाषा
खाकर चोट झुके, झुक जाये;

निष्ठुर दुनिया की धरती पर आँसू का अभिमान न लेना !

चिन्तानल की महाचिता में
सुख के भाव जलें, जल जायें;
पीड़ा के छाले पर जलते
दुख के घाव बलें, बल जायें;

शापित यौवन के श्मशान में आहों का वरदान न लेना !

कुटिल गरल-से, अपमानों के
निशिदिन घूँट ढले, ढल जाये;
उपहासों की हिमवर्षा से
जीवन-जलज गले, गल जाये;

पीड़ित जीवन की निधि-सी मुस्कानों का अवसान न लेना !

पीड़ा की पहचान न देना !

८८

देखा, उस घन का मुस्काना !

कितनी थीं पीड़ाएँ उसमें,
आहों की सिहरतीं उमंगें;
शीतल-सी ज्वाला जलती थी,
उद्वेलित थीं शान्त तरंगें;

झंझा की दुःसह चोटों में देखा, उस घन का मुस्काना !

कितनी तीखी जलन भरी थी
आशा का तड़पता तृषित उर;
धीमी-सी आभा बलती थी,
आहत श्लथ था मूक विकल सुर;

आँधी की ललकारों में नित देखा, दीपक का इतराना !

कितने थे चोखे वे काँटे,
चुभता-सा भौंरों का दंशन;
बेबस-सी साँसें चलती थीं
बरस न पाते थे वे लोचन;

शोणित से रंजित कलियों का देखा, धीरे-से लहराना !

कितने थे रोड़े पग-पग पर,
विस्तृत तम की निष्ठुर जाली;
प्राणों में पल-पल ढलती थी
कड़वे घूँटों की वह प्याली;

केवल ठठरी के पंथी का देखा, पथ पर बढ़ते जाना !

८६

पीड़ा में प्यार कसक उठता !

वातायन के विपुल रन्ध्र से
आती धीमी-सी पुरवैया;
मन की लहरों पर भावों की
हिलती धीरे-धीरे नैया;

दग्ध हृदय के तप्त सदन में स्मृतियों का भार मसक उठता !

दूर क्षितिज से लहराता-सा
आता मुरली का हल्का स्वर;
अन्तर्वीणा के तारों में
भरती झंकृति मृदुल मृदुलतर;

चिन्ता से चूर्णित आशा की लज्जा में लास ललक उठता !

आकांक्षा के अथक चरण पर
प्रतिपल विश्वास नया बढ़ता;
निराधार वायु की रेखा—
पर उच्छ्वास निरन्तर कढ़ता;

अन्तस् की ज्वाला में रह-रह शीतल-सा ज्वार लहक उठता !

मसले-से फोड़ों पर दुःसह
तीखी-सी टीस सिहर उठती;
दुःखों के अविरत दंशन से
प्राणों में पीर हहर उठती;

प्रतिदिन के मिटते यौवन में मीठा-सा भाव महक उठता ;
पीड़ा में प्यार कसक उठता !

९०

खो सकूँ विश्वास कैसे ?

सोचता हूँ, धूल में भी
हैं छिपे निर्मल जवाहर,
देखता हूँ, कंटकों में
हैं खिले पंकज मनोहर;
फिर स्वयं में वेदना का कर सकूँ परिहास कैसे ?

देखता हूँ, घोर तम में
खोजते हैं पथ सितारे,
देख, जलती भी चिता को
चाहता जग प्राण-प्याले;
फिर कहो, जीवन ! तुम्हारा कर सकूँ उपहास कैसे ?

शुष्क लकड़ी-चाम में नित
खोजता वादक मधुर स्वर,
पा सतत कुचलन कठिनतर
लहलहाती दूब सुन्दर;
नित्य भर्त्सित प्राण ले मैं तज सकूँ उच्छ्वास कैसे ?

चाँद हँसता है गगन में,
उमड़तीं लहरें धरा पर;
धार में द्रुत दौड़ धँसते
कूल मिटते हैं प्रणय-भर;
फिर कहो, मैं मधु-निशा की खो सकूँ प्रत्याश कैसे ?

खो सकूँ विश्वास कैसे ?

९१

रूठना क्या रूठना है, जब नहीं आधार कुछ भी !

मुस्कुराते लोचनों का
कब मधुर संकेत पाया ?
लहर-लहराते हृदय में
कब क्षणिक उन्मेष आया ?

प्रश्न सोपालम्भ कैसा, जब नहीं अधिकार कुछ भी !

शान्त सागर-से हृदय में
यदि पिये तूफान रहती ?
क्यों न साँसों में पिघलकर
पीर की खरधार बहती ?

रूठने की लाञ्छना क्यों, जब नहीं मनुहार कुछ भी !

नित मनाने के बहाने
छल रही निज को निरंतर;
भागती आँखें चुराये
दूर से भी दूर पथ पर;

सतत आमन्त्रण पुनः क्यों, जब नहीं उपहार कुछ भी !

दग्ध वनतरु-से मुझे तो
स्नेह का सिंचन मिला कब ?

शुष्क सर-से इस हृदय में
प्यार का पंकज खिला कब ?
में मधुप मधुमत्त कैसा, जब नहीं मधु-धार कुछ भी !

अरुण मृदु तेरे अधर पर
वेदना-रेखा खिंची कब ?
चपल पलकों में थिरकते
अश्रु से पुतली सजी कब ?
दे रही यह घाव कैसा, जब नहीं उपचार कुछ भी !

९२

नींद न पिक के सजल नयन में !
डूब चली मधुबाला धीरे नील-नीलतर सघन गगन में !

घूम रही चिन्ता की चक्की
अन्तस्तल के भावस्थल पर;
फूट उठी वेदना-धरा पर
मौन कामना मचल-मचलकर;
गूँज रही करुणा की लहरी विकल-विकलतर भुवन-भवन में !

रागारुण पाटल-अधरों पर
कुटज-पुष्प की फीकी छाया;
छल-छल-छल पंकज-प्याली में
रिमझिम-झिम पावस लहराया;
मुखरित छविमय केका-नर्त्तन विपिन-विपिन में, गुहा गहन में !

सिसक रहा उपवन उजड़ा-सा,
कंपित मानस के वातायन;
माधव की सूनी समाधि पर
ढरते मलयज के दृग उन्मन;
मलिन मंजरी-शय्या पर पिक बदल रहा करवट क्षण-क्षण में !

९३

यह जीवन अभिनय क्षण-क्षण का !

निर्मम-सा बन्धन पग-पग पर,
श्वास-श्वास का दमन निरन्तर;
सहज भाव को समाधिस्थ कर
कृत्रिम भाव-प्रदर्शन कटुतर;
जड़िमा के इस रंगमंच पर चलता अभिनय यंत्रित मन का !

किन्तु, सुरुचि-संयम हैं, बन्धन,
इससे बँध गतिमय जल-जीवन;
सरस मधुरतर शुभ सुन्दरतर
आत्म-दमन ही मधुमय बन्धन;
व्यर्थ बोझ है, महापीर है, बंधन-हीन हृदय जीवन का !

बन्धन, संयम, विश्व-सत्य है,
आत्म-नियन्त्रण, आत्म-निबंधन;
पीड़ा में प्यार सिखा देता
इस अभिनय के अभिनव नर्त्तन;
सदामुक्त, निर्बन्ध, निराकुल यह जीवन अनुशय जन-जन का !

९४

पीड़ा ही है प्यारी मुझको !

दुख की घड़ियों में मिल जाती मादकता कुछ न्यारी, मुझको !

सुख की छोटी-छोटी लहरें
जब-जब हैं कंपित कर जातीं;
तब-तब मानस में सूनी-सी
चिन्ताएँ कुछ भर-भर आतीं;

क्षण भर हँसते फूलों से तो, प्रिय काँटों की क्यारी, मुझको !

पला-बढ़ा दुख में यह तन-मन,
मिले घूमने को दुख-उपवन;
जीवन और मरण दुख ही में,
दुख से नाता सघन सनातन;

दुख ही तो अपना सकता है देकर ममता सारी, मुझको !

व्यथा-तराजू पर ही प्रतिपल
अपनी सत्ता तौल सका हूँ;
मैं भी इस धरती का मानव,
बन अधिकारी बोल सका हूँ;

मीठा-मीठा-सा लगता है दुख का बन्धन भारी, मुझको !

दुख के क्षण में आशाओं के
मोहक सपने सच हो जाते;
अम्बर, अवनी, दिग्-मण्डल, सब
बिलकुल अपने बन मुस्काते;
दुख से घुलते जीवन में मिल जाती कुछ किलकारी, मुझको !

दुख में ही घुलकर मैंने तो,
सत्य स्नेह को है पहचाना;
नर के अन्तर के ईश्वर को
दोष-पुंज से बीना, छाना;
दुख में शीतल ज्वाला दिखती अन्तःपावनकारी, मुझको !

६५

धरती की छाती जलती है !
मेघदूत की विकल प्रतीक्षा में पलकें उठती, गिरती हैं !
आज धरा का जर्जर यौवन,
रूखा-सूखा तन-मन-जीवन;
उजड़ी शोभा, उखड़ी साँसें,
पड़ी अनमनी, रुग्णा, उन्मन;
धराधीश कृषकों के दृग से आँसू की पाँती ढलती है !
खेतों के सूने आँगन में
ढेलों के कंकाल पड़े हैं;
वसन-हीन कृष्णा-क्यारी पर
दुःशासन-दुष्काल खड़े हैं;
पौधों के पीले गालों पर मरघट की बाती बलती है !
मिट गई धूप के धर्षण में
मीठी-मीठी-सी हरियाली;
लुट गई ललित-सी कलियों की
उगती-उगती-सी खुशियाली;
हर घड़ी हहरती चक्की-सी झंझा की भाथी चलती है !
जन-जन के अन्तर-अम्बर को
छाये जाता चिन्ता का तम;
माथे में काले भविष्य का
खिंचता प्रश्न-चिह्न भीषणतम;
हाहाकार निगलता जाता, आशा अपना कर मलती है !

९६

तुम पीड़ा मेरे प्राणों की !
मोहक मंजुल मीड़ अकेली दर्दीले उर के गानों की !

द्वंद्व हृदय का दुंद बाँधता—
चला जा रहा चिन्ता-पथ पर;
भावों के उत्थान-पतन में
झर-झर झरता केवल पतझर;

स्वप्नमयी मीठी व्रीड़ा तुम मेरी फीकी मुस्कानों की !

नीरसता से भरी उदासी
उबल रही उर-प्रस्पन्दन में;
आवेगों की टोली प्यासी
खोज रही रस अन्तर्मन में;

तरल-सघन शीतल छाया तुम मेरे जलते अरमानों की !

अन्तरंग को जला रहा है
निविड़ वेदनानल की ज्वाला;
पिरो रहा, यौवन जीवनमय,
शिथिल शून्यताओं की माला,

सुधामयी सुन्दर आशा तुम मेरे आहत अभिमानों की !

९७

आ बसा है कौन चुपके से हृदय में ?
कल्पनाओं में निरन्तर
द्वन्द्व रह-रह उमड़ता है;
नयन के नीलम गगन में
सघन घन घिर घुमड़ता है;
आ लगा है कौन पलकों के निलय में ?

चेतना में वेदना का
स्वप्न धीरे छा रहा है;
तार पर उर-बीन के, चुप
स्वर अकेला गा रहा है;
आ सजा है कौन भावों के उदय में ?

मोह, ममता में समाकर
कर रहा वरदान जीवन;
प्राण, तन को पुलक देकर
कर रहे स्वीकार बन्धन;
आ जगा है कौन प्राणों के प्रलय में ?

सतत मिटती-सी लहर में
साधना आशा बनी है;
नित उदासी के पहर में
भावना भाषा बनी है;
आ मिला है कौन जाने के समय में ?

९८

दिन के क्षण-क्षण गिन-गिन जाते !

चिन्ता की चंचल-सी मछली
पहर-लहर पर तिर कर आती;
प्राणों की विह्वल-सी पुतली
पीड़ा के घट भर-भर लाती;

मन के हाथों से नित गिन-गिन दिन के क्षण-क्षण छिन-छिन जाते !

जीवन की सम-विषम घड़ी में
भावों की भौंहें तन जातीं;
आशा आहत बेबस–सी नित
दृग में सावन घन बन आती;

उर के तारों पर नीरव स्वर साँसों को नित गिन-गिन जाते !

रंगभूमि-सी धरती पर के
मानव पात्र, किन्तु मैं दर्शक;
ठगा-बिका-सा देख रहा हूँ
बदल रहे दृश्यों को अपलक;

पिच्छिल जीवन, अंचल पर से फिसल धूल में सन-सन जाते !

६६

अपनी पीड़ा पड़ी पुरानी !
बीत गये वे दिन, जब मुझमें थी रोने की नादानी !

सदा मुझे चिन्ता प्रियजन की,
इनकी, उनकी और स्वजन की;
खिल आये हैं शूल साँस में,
ऐंठ रहीं गाँठें बन्धन की;

अपनी पीर पचा ली मैंने, उसे समझता एक कहानी !

प्राणों के कम्पन में क्षण-क्षण
लहराती है उनकी आशा;
मानस की धड़कन में पल-पल
घहराती है उनकी भाषा;

उनकी घोर निराशा में ही बेकल है मेरी हैरानी !

इच्छा में कुछ प्यास नहीं है,
व्यंग्य, हास, परिहास कहीं है ?
असफलता साधना बनी है,
जलता उर-उच्छ्वास नहीं है;

उनकी प्रबल प्यास में मेरी व्यथा-विद्ध बेताव जवानी !

इस जीवन से राग न मुझको,
त्याग और वैराग्य न मुझको;
हरसाता सौभाग्य न मुझको,
झुलसाता दुर्भाग्य न मुझको;

उनके ही भावों से मुझ पर सुख या दुख की बनी निशानी !

१००

चाँदनी के प्राण चंचल !
लोटता भू-धूलि पर गोधूलि में वह चाँद विह्वल !

साँझ चैती अनमनी-सी
वात से कुछ बात अपनी—
कह रही, पर कह न सकती
वेदनाहत चन्द्रवदनी;
बींधती है शून्य में कुछ शून्य की ही याद पल-पल !

प्यास की जो चिर प्रतीक्षा,
वह प्रतीक्षा खल रही अब;
आग जो थी स्वप्न-मीठी,
वह जहर-सी जल रही अब;
घुल रहे हैं जिन्दगी पर जिन्दगी के प्राण-परिमल !

मृदुल किसलय-कामना पर
शुष्क धरती मुस्कुराती;
कौन जाने वेदना की—
प्यास, जो आँसू चुराती;
खोजता है प्यार में ही प्यार का सुन्दर सरल हल !

१०१

मैं किसी की पीर का अंगार बनकर जल रहा हूँ !

साधना-साधित प्रतीक्षा
साध-सी स्वर में सधी है;
ज्योति मिट्टी की परिधि में
भावनाओं से बँधी है;

मैं किसी के स्वप्न का संसार बनकर चल रहा हूँ !

श्रान्ति में विश्रान्ति पाने
श्रान्त मानव-मन निरन्तर;
भ्रान्ति में निर्भ्रान्ति होने
भ्रान्त जंगम-जड़ विनश्वर;

मैं किसी के सत्य का शृंगार बनकर पल रहा हूँ !

प्यार की प्रतिमा युगों से
लालसा-लालित खड़ी है;
भाव से आकुल अतल में
कामना कीलित, गड़ी है;

मैं किसी के स्नेह की मधुधार बनकर ढल रहा हूँ !

तरल आशा से पिपासित
चपल उन्मन-सी निराशा;
मूक उर की हूक से नित
नयन की वाचाल भाषा;

मैं किसी के फूल का अभिसार बनकर फल रहा हूँ !

लाज से विजड़ित उषा के
अरुण अंचल राग-चंचल;
सरस मृदु मुस्कानवाली
तारिका के प्राण विह्वल;

मैं किसी के अश्रु को लाचार बनकर छल रहा हूँ !

१०२

इस पीड़ा का पार न होगा !

यह है लोक कपट, छल, खल का,
यह है क्षेत्र कलह, दल-बल का;
यह कहना है व्यर्थ कि मरने-जीने का संसार न होगा !

यह कालिमा वेदना-घन की,
यह कट् धूम निराश-ज्वलन की;
घृणा सींचते रहो अश्रु से, पर खिलता-सा प्यार न होगा !

यह है धाम कठोर कर्म का,
सत्य-शूल यह मृदुल मर्म का;
यहाँ मधुर मधुवन का सुरभित वनफूलों का द्वार न होगा !

यह दुनिया चिन्ता का मेला,
नहीं विचरने की है वेला;
पल-पल पट-परिवर्त्तन होता, इसका 'अन्तिम बार' न होगा !

यौवन का प्रस्फुलिंग छूटता,
धुँधुआती तीखी मादकता;
जलती-बुझती सदा रहेगी, इस बाती का क्षार न होगा !

अखिल वस्तुओं में प्रेरण है,
स्वाभाविक गति है, जीवन है;
'विषय-निवृत्ति तृप्ति है' यह तो संसृति को स्वीकार न होगा !

१०३

बदली के काले काजल में चपला के नयन चमकते हैं !

उन्मीलन और निमीलन में
मन का इतिहास बदलता है;
अश्रु-भरे अंबर-अंचल में
प्यासा वातास मचलता है;
इन्द्रधनुष के अरुण गाल पर पावस के अधर दमकते हैं !

अमराई के हरित क्षितिज में
पावस-संध्या शरमाती-सी;
उड़ी जा रही दूर अकेली
राजहंसिनी अकुलाती-सी;
अतुल स्नेह से बोझिल उर में हाहाकार हुमकते हैं !

नीर-भरे स्वर के कम्पन में
स्मृतियों के ज्वार उमड़ते हैं;
शून्य प्राण के शुष्क गगन में
आशा के मेघ घुमड़ते हैं;
घने अश्रु की तुहिन-चिता पर जीवन पिघल ढलकते हैं !

१०४

अब पीड़ा का प्यार चाहिए !

घटना तो बन चुकी पहेली, अब केवल उद्‌गार चाहिए !

गहरा बनता जाता अनुभव
पाकर विकल विश्व के दर्शन;
जीवन असफल, इच्छा कुंठित
पा अविदित ममता के बन्धन;

सपना-सा बन गया मोद-मद, अब केवल लघु ज्वार चाहिए !

श्लथ-सा यौवन-गीत हृदय का
पाकर निठुर नियति-उत्पीड़न;
विकल मूक वीणा आशा की
पा पीड़ा का प्रबल प्रधर्षण;

रचना तो मिट गयी भाग्य-सी, अब धूमिल आधार चाहिए !

हार गया उत्साह पुराना,
पर न स्नेह-अधिकार मिल सका;
खिन्न हुईं चेष्टाएँ सारी,
पर न मनोरथ-कुसुम खिल सका;

हँसना तो हो गया तिरोहित, अब लोचन-जलधार चाहिए !

शून्य कल्पना-धरती मेरी,
बहती भावुकता की धारा;
डूब गये वैभव विवेक के,
भग्न ज्ञान-विज्ञान-किनारा;

जीना तो अभिशाप बन चुका, अब केवल उद्धार चाहिए !

मेरा पंथ विदित है मुझको,
जान रहा मंजिल की दूरी;
थक जाऊँगा, बनी रहेंगी—
अभिलाषाएँ सभी अधूरी;

जलना तो वरदान हो चुका, अब पीड़ा का प्यार चाहिए !

१०५

मैं स्मृतियों का भार लिये चलता हूँ !
स्नेह-हीन दीपक-सा मृदु-मृदु लघु ज्योतिर्धार लिये बलता हूँ !

अन्धकार निशि-नीरवता में
बेसुध हो सोया, खोया-सा
पलकों पर उन तारों का मैं,
संसार लिये सकुचाया-सा

क्षण के पथ पर धीरे-धीरे जीवन का भार लिये चलता हूँ !

जर्जर अन्तर की वीणा में,
व्यथा-गीत नित मधुर मुखर है;
अन्तर्बाष्प कथा-नयनों में
व्याकुलता की मूक लहर है;

असन्तोष के धूमिल नभ में पीड़ा का ज्वार लिये जलता हूँ !

नग्न चाँदनी की आभा में
विकसित चन्दा का नवयौवन;
पहन ज्वाल की माला, मीठी-सी–
वे स्मृतियाँ उन्मन-उन्मन–

जाग रहीं उर के कण-कण में; मैं मिटता-सा प्यार लिये पलता हूँ!

१०६

काँपता संसार थर-थर !
भूमता युग विकल पीड़ा-प्रेयसी को बाँह में भर !
मोह-घन में मानवों का
है छिपा अन्तर्दिवाकर;
छा गया गिरि-सा अचल तम
घेर अन्तर और बाहर;
कर्ममय सब रूप खो, पाते हृदय-मंथन निरन्तर !
हैं उपस्थित विषम घड़ियाँ,
विपथ कर्मठ भावनाएँ;
असह अन्तर्दाह में सब–
क्षार जागृति-चेतनाएँ;
तैरता भव-सिंधु में नर चाटता है फेन थक कर !
सृष्टि-सुस्थिति को महालय
ताल दे ललकारता है;
क्रूर हिंसा-अनल हाहा—
कार कर फुफकारता है;
धधकनेवाली चिता का मिल रहा संकेत सस्वर !
अमल आदर पा रही हैं
आपसी जय औ' पराजय;
बन गये जन-जन-हृदय हैं
दुख–प्रलय, यम–यातनालय;
व्योम-तड़िता की शिखा छू जल रहा भू-दीप नश्वर !
काँपता संसार थर-थर !

१०७

झंकार हमारा परिचित है !

जीवन के सुख-दुख की जिसमें अमित जीत औ' हार निहित है!

अकल, अलख है नीरव वीणा,
अन्तर्हित है गानेवाली;
किन्तु, अनाहत नाद गूँजता
जिसमें मादकता की लाली;

उसमें भी सारी धरती का रुदन-हास्य-संसार मिलित है !

मूर्त्त नहीं है, निराकार है,
पर, सुषमा साकार खड़ी-सी;
परम पूत है, निर्विकार है,
पर, आकर्षण-शक्ति बड़ी-सी;

जिसमें तृष्णिल अरमानों का उठता नूतन ज्वार ज्वलित है !

छिपी हुईं अंगुलियाँ, लेकिन—
मर्मस्थल गुदगुदा रही है;
कण्ठ नहीं, अश्राव्य किन्तु कुछ—
धीरे-से बुदबुदा रही है;

जिसमें अन्तर के द्वन्द्वों का आहत हाहाकार ध्वनित है !

झंकार हमारा परिचित है !

१०८

चाँद पीला ढल रहा है !

चाँदनी मुरझा गयी, अब श्वास तिल-तिल छल रहा है !

तोड़ ममता-मोह-बन्धन,
छोड़ अभिनव स्नेह-नन्दन;
तिमिर-पारावार में जा—
मग्न करता स्वर्ण-जीवन;

करुण करुणावेग में अरमान धूमिल जल रहा है !

अश्रुकण बरसा रहे नित
व्योम के नक्षत्र-लोचन;
सिसक लम्बी आह भरते
शिशिर के कम्पित समीरण;

वेदना का चक्र निष्ठुर भाव स्नेहिल दल रहा है !

बल रहे मधु-स्वप्न ऊर्मिल,
ऊँघती कुछ याद तन्द्रिल;
मलिन-मुख अब हो रही नव-
मिलन की मधुरात झिलमिल;

मिट गया परिचय, अकेला पथिक स्वेदिल चल रहा है !

चाँद पीला ढल रहा है !

१०९

मानव मैं अपमानित कब से !
अपनी छाया को छू लेने भटक रहा एकाकी कब से !

मैं चिर अपमानित, चिर पीड़ित,
चिर उपहसित, प्रतारित, यन्त्रित;
हेय दृष्टि से भी अवहेलित,
मेरा जीवन भर्त्सित सब से;
सहिष्णुता, पी-पीकर पीड़ा थाम रही निज छाती कब से !

मेरा मृदु स्वर सदा उपेक्षित,
प्रतिपल प्रत्युत्तर से वंचित;
मेरी विश्वोपस्थिति लांछित,
अपसारित मैं रज-सा सब से;
पशुत्यक्त कोने में लेता क्रूर नियति की झाँकी कबसे !

सरल सुकोमल सुस्मित तर्जित,
आशाएँ प्रोत्साहन-वर्जित;
स्वाभिमान संकोचित, खर्वित,
मेरी लघु गति मर्दित सबसे;
अपनी मानवता पा लेने, खाता तीखी चोटें कब से !

११०

बंदिनी निद्रा हमारी !

तृषित अनिमिष पलक नभ में खोजती मधु-धार न्यारी !

आज क्यों अकुला रही
चिर मूक मृदु आशाकुमारी ?

तोड़ती क्यों विकल मूर्च्छित
वेदना अपनी खुमारी ?

ले रही अँगड़ाइयाँ क्यों आह भर तन्द्रा बिचारी ?

याद क्यों फिर आ रहीं वे
विगत की स्मृतियाँ पुरानी ?

कह रहा मृदु वात लतिका—
इंगितों में मधु-कहानी;

साज सज क्यों आ रहे सपने उषा-नवरश्मि-हारी ?

अश्रु-भींगी हृदय-वीणा
क्यों करुण संगीत गाती ?

थपकियाँ क्यों दे निशा—
गंधा सुरभि-उन्मद बनाती ?

भर दृगों में रात, गिनता तारिका-उपहास भारी !

कुसुम कोमलतम करों में
ले व्यजन क्यों झल रहे हैं ?
चाँदनी सहला रही क्यों ?
प्राण मेरे जल रहे हैं !
नयन-पुट से फूट मुक्ता झर रही हिमरूपधारी ?

भर पिकी पंचम स्वरों में
लोरियाँ क्यों ना सुनाये ?
मलय की मोहक हवा फिर
ले बहे क्यों ना बलाएँ ?
पर, अधूरी कामना की टूटतीं कड़ियाँ हमारी ?
बंदिनी निद्रा हमारी !

१११

मैं धरती पर का मानव हूँ, मानव का गीत सुनाता हूँ !
धरती पर ही तन का मन है,
धरती पर ही मन का तन है;
तन-मन ही मेरी सत्ता है, तन-मन का गीत सुनाता हूँ !
संघर्षों से कुचला-मसला,
मानव है पीड़ा का पुतला;
पीड़ा ही मानव-जोवन है, जीवन का गीत सुनाता हूँ !
मरे प्यार की लाश निरन्तर,
ढोता, चलता जाता पथ पर;
'वहन-सहन' है कर्म धरा का, धरती का गीत सुनाता हूँ !
धुँधली-सी आशा है बलती,
इच्छा की छाया है हिलती;
पलते प्रतिपल प्राण आश में, प्राणों का गीत सुनाता हूँ !
धरती है काँटों का सपना,
यहाँ जागरण ही है अपना;
निद्रा है अभिशाप भयंकर, जागृति का गीत सुनाता हूँ !
जीवन है, अभाव का मेला,
गति है, नित-नित नया झमेला;
मरण मृदुल जीवन-परिणति है, आँसू का गीत सुनाता हूँ !

११२

जा रहा हूँ दूर, परिचय को छिपाये !

आज मैं बिलकुल अकेला
चल रहा हूँ शूल-पथ पर;
आँधियों को दे निमंत्रण
जल रहा हूँ भूल-कण पर;

भय कि इस अभिशप्त पथ पर साथ कोई मिल न जाये !

पुण्य उस दिन का, पुरातन—
पाप बन कर हँस रहा है;
विकल जीवन को कि अद्‌भुत
एक बन्धन कस रहा है;

भय कि इस पीड़न-प्रहर में याद कोई जग न जाये !

दग्ध मानस में युगों से
ताप ढोता आ रहा हूँ;
सच कि मुस्काते अधर, पर
मौन रोता आ रहा हूँ;

भय कि आँचल से किसी के अश्रु मेरे पुँछ न जायें !

११३

ओ पथिक ! पीर को पीता चल,
अपनी ही मस्ती में हरदम,
जीवन का गीत सुनाता चल !

जग की हर एक समस्या को,
राका और अमावस्या को;
जीवन का अंग बनाता चल,
ओ पथिक ! पीर को पीता चल !

नर की हर आवश्यकता को,
नित की अभाव–उत्सुकता को;
जीवन की मौज समझता चल,
ओ पथिक ! पीर को पोता चल !

आहत पीड़ा की घड़ियों से,
आँसू की अगणित लड़ियों से;
जीवन का मोल चुकाता चल,
ओ पथिक ! पीर को पीता चल !

जीवन की दुखमय वेला में,
प्राणों की सुखमय खेला में;
नित हँसता और हँसाता चल,
ओ पथिक ! पीर को पीता चल !

अन्तस् के घाव मिटाने को,
जीवन के दाँव लगाने को;
अपने को सतत मिटाता चल,
ओ पथिक ! पीर को पीता चल !

पीड़ित अभिमान जगाने को,
मस्तक की शान भगाने को;
भावों का दीप जलाता चल,
ओ पथिक ! पीर को पीता चल !

धरती के मीठे गानों को,
अम्बर की तीखी तानों को;
नस-नस में कस-कस भरता चल,
ओ पथिक ! पीर को पीता चल !

११४

ये दिवस मूक-सी भाषा में नित कानों में कुछ कह जाते !

जीवन छोटा, आँखें प्यासी,
अनवरत तृप्ति का अन्वेषण;
सपने लम्बे, रातें छोटी,
मिटने का आकुल आकर्षण;

चंचल यौवन गालों पर चुप कुछ कहने को नित बह आते !

एक याद तीखी-सी, जिस पर--
जीवन की गति रुक न सकेगी;
पाने की विह्वल अभिलाषा
बाधाओं में झुक न सकेगी;

बेसुध मन में भाव-भवन ढहते-ढहते भी कुछ रह जाते !

मेरा कोई क्षितिज-पार में,
किसका कोमल-सा सपना है ?
धड़कन है उर-पुर में किसकी ?
लगता क्यों कोई अपना है ?

क्यों अच्छी लगती है पीड़ा, कौन उसे चुप पी-सह जाते !

११५

प्यास का परिहास, मानव-ज्ञान की अवचेतना है !

बच गई बस गूँज स्वर की, बीन के सब तार टूटे,
रह गई बस याद धुँधली, स्वप्न औ' संसार छूटे ;
हार का उपहार औ' अभिशाप का वरदान लेकर
चल रहा हूँ, राह सच्ची, और सब विस्तार झूठे ;

मान औ' अपमान, दुर्बल प्राण की परिकल्पना है !

कोकिला तो मौन कब से, कूक की बस हूक मन में,
मूर्त्ति अन्तर्हित, मधुर-सी ज्योति रूपायित भुवन में ;
व्यक्ति का अभिमान, निर्मम मृत्यु की मुस्कान लेकर
जल रहा, युग-दीप हूँ मैं, ज्योति फैली भू-गगन में ;

प्यार का परिमाण, केवल मोह की परिभावना है !

नींद कब की खुल चुकी, अब बस खुमारी रह गई है ,
बच रहा उन्माद, प्याला भग्न, मदिरा बह गई है ;
विश्व का उपहास, आशा का मधुर मधुमास लेकर
मूक जीवन-रागिनी हर साँस में कुछ कह गई है ;

भावना अवसान की, बस बुद्धि की अवहेलना है !

११६

क्यों उदास, तुम बोलो, पंथी !

धरती पर अम्बर फैला है,
देती ठंडी हवा निमंत्रण;
गाते-हँसते चाँद-सितारे
उगते-मिटते सपने उन्मन;

विहग ! खोल पाँखें, अब लेता क्यों उसास, तुम बोलो, पंथी !

मुस्कानों में उषा सँवरती
पलकों के पग-पग में हलचल;
भर लेने को श्वास-पाश में
नयनों के दोनों भुज चंचल;

पथ पर घाव-भरे पैरों में भर हुलास, बल तौलो, पंथी !

तम के सूने-से पहरों में
चिन्ता-सी बन आतीं रातें;
आतप के सूखे होठों पर
झुलस रहीं बीती की बातें;

आशा की शीतल चौखट पर क्यों निराश, तुम बोलो, पंथी !

निठुर काल के मृदुल खेल में
पीड़ा मदिरा-सी मतवाली;
भर-भर कर दोनों हाथों को
करती जाती खाली-खाली;

देनेवाले बलिदानी ! तुम क्यों हताश, कुछ बोलो, पंथी !

११७

मानव अपने को छलता है !
खुद सुलगा कर चिनगारी को, उसमे तिल-तिलकर जलता है !

नील महामंडप के नीचे
पीड़ा से करता गठबंधन;
सुलझाने के अहंकार में
सतत बढ़ाता अपनी उलझन;

उलझन की उल्का में मानव भीतर ही भीतर घुलता है !

जलती साँसों की सीढ़ी पर
पंडित बन पग को धरता है;
शूल-भरा लम्बा टेढ़ा-सा
जीवन-मग पार उतरता है;

गलती से बिंध गये चरण से लोहू का कतरा ढलता है !

अपनी गलती को दुर्बल मन
नित्य टालता होनी कहकर;
जहाँ हारता संघर्षों से
वहाँ समझता अनहोनी नर;

होनी-अनहोनी की छलना में यह पुतला सदा फिसलता है !

मानव और परिस्थितियों में
आँखमिचौनी निठुर पीर की;
नित बहता, पर पता न रखता—
हार-जीत की, धार-तीर की;

क्रूर भँवर के चक्कर में पड़ दम्भी अपना कर मलता है !

११८

यह है भाग-दौड़ जीवन की !

पीछे छूट रहे हैं पल-पल
विस्तृत धरती, विस्तृत अम्बर;
साथ चली आती है केवल
अपनी ही छाया अविनश्वर;

अरे ! सोचने के पहले ही सुधि सो जाती मानव-मन की !
यह है तोड़-जोड़ जीवन की !

एक साँस में ही उद्धूलित
सपने सौ-सौ आशाओं के;
मूक आह में ही उत्कूलित
सागर सौ-सौ भाषाओं के;

झंकृत होने के पहले ही धुन खो जाती मानव-मन की !
यह है विषम मोड़ जीवन की !

छू न सका जग का यह मानव
कुटिल काल की सर्पिल रेखा;
खेद, एक भी अपने पग का
रख न सका वह कुछ भी लेखा;

शोक ! कि चलने के पहले ही गति हो जाती श्थल तन मन की !
यह है व्यर्थ होड़ जीवन की !

११९

ये गगन के गीत निशिदिन माँगते हैं प्राण मेरे !

प्राण में मुस्कान साजे नित धरा के तार बोले ,
मधुर सन-सन पवन-घन में भाव अपना द्वार खोले ;
उमग आशा मन-तुला पर, पीर तीखी-सी भुलाकर ,
सुरभि-सी सुधि पर सिहरती साँस में निज प्यार तौले ;
यह प्रणय को रीति प्रतिपल चाहती अरमान मेरे !

वेदना के मूक स्वर में बीन का मधुराग साधे ,
मिट रहे हर पल-पहर में सरस नव अनुराग बाँधे ;
स्वप्न का संसार सुन्दर धड़कनों में चुप सँजोये
पार जाने चल रहा है हृदय सिर पर द्वन्द्व लादे ;
मगन मन के मीत क्षण-क्षण हाँकते श्लथ यान मेरे !

नित्य की कुण्ठा कठिनतर, नित्य उत्कण्ठा प्रबलतर ,
भेद अपने में छिपाये विकल उर को अधर पर धर ;
शिथिल पलकों में युगों से दर्द की दुनिया समेटे ,
सरित्-सी बहती रही है भावना खरधार हर-हर ,
बाँधते हैं नयन रह-रह स्वप्न के अवसान मेरे !

१२०

व्योम की काली घटाएँ माँगती हैं प्राण का बलिदान !

मौन अलका की सुहागिनि
वेदना में घुल रही है;
नयन-कमलों की पँखुड़ियाँ
लालसा में धुल रही हैं;

व्यथित-सी विद्युत्-शिखाएँ जागतीं ले प्यार का अभिमान !

मथित-मानस पथिकवनिता
द्वन्द्व में उलझी खड़ी है;
चपल मन के साथ चलते—
चरण में बेड़ी पड़ी है;

चकित-सी आशा-चिताएँ उमगतीं ले नियति का अपमान !

सरस सपनों की विहंगिनि
जागरण में जल रही है;
तरल वृन्तों की विलासिनि
कामना में पल रही है;

विरह की विह्वल निशाएँ चाहतीं नव प्रात का वरदान !

गीतानुक्रमणिका

संख्याक्रम : शीर्षक्रम : पृष्ठक्रम

आशा

१.	आशा में ही झंकृत होते—	...	१
२.	मैं तुमको पहचान न पाया !	...	२
३.	आशा के उजड़े उपवन में—	...	४
४.	निर्बल आशा बल न सकेगी !	...	५
५.	सिहर उठते प्राण मेरे !	...	७
६.	विकल उनींदी पलकों में—	...	८
७.	वे दिन बीत गये चुपके से !	...	९
८.	भोले, अपना प्यार न खोना !	...	१०
९.	श्यामल अलकें डोल रही थीं !	...	१२
१०.	आराध्य मधु-सुषमा तुम्हारी !	...	१३
११.	मरघट में छलक रही प्याली !	...	१४
१२.	क्षण-क्षण मेरी कलित कल्पना—	...	१५
१३.	सजल दृग मैं देखता—	...	१६
१४.	आरती स्मृति की उतारूँ !	...	१८
१५.	लगता उच्छ्वास तुम्हारा है !	...	१९
१६.	पास अब कुछ आ रहा हूँ !	...	२०
१७.	लोट रही श्यामलता धरती पर !	...	२१
१८.	स्वप्न, प्यार, बंधन, जग-जीवन !	...	२२
१९.	चेतना फिर आ रही है !	...	२३

२०.	शून्य नीरव नील नभ में—	...	...	२४
२१.	सखि री ! आज नयन से दूर !	...	...	२५
२२.	आज मन चञ्चल बना है !	...	...	२६
२३.	ठुकरा न सका मैं आमन्त्रण !	...	...	२७
२४.	कर सकता मैं प्यार तुम्हें यदि !	...	...	२८
२५.	सपने अपने हैं जीवन भर !	...	...	२९
२६.	मैं विजेता गा रहा हूँ !	...	...	३०
२७.	आशा का संसार नयन में !	...	...	३१
२८.	आशाएँ आधार माँगतीं !	...	...	३२
२९.	जा टिकती है मेरी आशा !	...	...	३३
३०.	अन्तस् के चञ्चल भावों को—	...	...	३४
३१.	जाग उठी जिज्ञासा मन में !	...	...	३५
३२.	जीवन करवट बदल रहा है !	....	....	३६
३३.	विकल जीवन पीर से—	...	....	३७
३४.	मैं गीत बनाता, तुम गाओ !	...	...	३८
३५.	चिर प्रतीक्षा में हमारी—	...	...	३९
३६.	बुनता जाता मैं अतीत—	...	...	४१
३७.	उस पार क्षितिज से लहराता—	...	...	४२
३८.	आज मधु से स्नात रजनी !	...	...	४३
३९.	कवि ! किसी की याद—	...	....	४४
४०.	अनजान देश का मैं परवाना !	....	...	४६

कामना

१.	जाग उठी इच्छा ढलती-सी !	...	....	५१
२.	कामना की मधुचिता में—	...	...	५२
३.	मन को मना लूँ किस तरह ?	....	....	५३
४.	दूर-दूर ही रहते आये—	....	...	५४

५.	घटा में घुल रहे शोले—	....	५५
६.	मेरा सारा विश्व, किन्तु मैं—	....	५७
७.	विश्वास नहीं अब जमता है !	....	५८
८.	मेरे जीवन की सन्ध्या में—	... .	५९
९.	आज मन उन्मन हमारा !	... ...	६०
१०.	कभी जब मन मचलता है !	... ...	६१
११.	प्रेम सघन घन-सा लहराया !	... ...	६२
१२.	रूपसी ! सौन्दर्य में—	... ...	६३
१३.	प्राण में वरदान भर लो—	... ...	६४
१४.	छू-छू जाता है प्राणों को—	... ...	६५
१५.	तिमिर बीच तारे मुसकाते !	... ...	६६
१६.	विश्वास खोजता चलता हूँ !	... ...	६७
१७.	पीड़ा को सहला मत देना !	... ...	६८
१८.	जीने का अधिकार चाहता !	... ...	६९
१९.	उस रूप की महिमा कहाँ है ?	... ...	७०
२०.	मैं जिऊँगा, इसलिए—	... ...	७१
२१.	राही बनना चाह रहा—	... ...	७२
२२.	क्षुब्ध अन्तर्दीप भावों के तिमिर पर !	... ...	७३
२३.	रूप, तेरा रूप, रूपसि !	... ...	७४
२४.	जब तक तेरी याद रहेगी—	... ...	७५
२५.	तन-मन मेरे दौड़ रहे हैं !	....	७६
२६.	किसे सुनाऊँ अपना निश्चय !	....	७७
२७.	सौ बार लूँगा जन्म तेरी साधना को !	... .	७८
२८.	ऐसा उन्माद नहीं लूँगा—	....	७९
२९.	रूप बन जाये अमर वर !	....	८०
३०.	युगों के बाद तुम आये !	....	८१
३१.	तिमिर में ज्योति बन आई !	....	८२

३२. आज रात मेरी मनमानी ! ८३
३३. नीरव क्षण का श्लथ सूनापन— ८४
३४. घूँघट में शरमाता यौवन ! ८५
३५. चरण चञ्चल हो उठे हैं— ८६
३६. भोले-भाले पागल-पागल— ८७
३७. स्मृतियों के हार बने तारे ! ८९
३८. अमृतकण बरसा दो, शशधर ! ९०
३९. मैं कभी न गाये जानेवाले— ९१
४०. स्मृतियों का दीप जला देना ! ९२

वेदना

१. वेदना नित फलवती हो ! ९५
२. खोल दो तुम पीड़ा का द्वार ! ९६
३. पीर है सचमुच मृदुलतम प्यार— ९७
४. संसृति का मिलता नहीं कूल ! ९८
५. यह विराग पहला, जीवन का ! ९९
६. मन की पीड़ा खो न सकूँगा ! १००
७. पीड़ा की पहचान न देना ! १०१
८. देखा, उस घन का मुस्काना ! १०२
९. पीड़ा में प्यार कसक उठता ! १०३
१०. खो सकूँ विश्वास कैसे ? १०४
११. रूठना क्या रूठना है— १०५
१२. नींद न पिक के सजल नयन मे ! १०७
१३. यह जीवन अभिनय क्षण-क्षण का ! १०८
१४. पीड़ा ही है प्यारी मुझको ! १०९
१५. धरती की छाती जलती है ! १११
१६. तुम पीड़ा मेरे प्राणों की ! ११२

१७.	आ बसा है कौन चुपके—	... ...	११३
१८.	दिन के क्षण-क्षण गिन-गिन जाते !	... .	११४
१९.	अपनी पीड़ा पड़ी पुरानी !	....	११५
२०.	चाँदनी के प्राण चञ्चल !	....	११६
२१.	मैं किसी की पीर का अंगार—	... .	११७
२२.	इस पीड़ा का पार न होगा !	....	११९
२३.	बदली के काले काजल में	....	१२०
२४.	अब पीड़ा का प्यार चाहिए !	....	१२१
२५.	मैं स्मृतियों का भार लिये—	....	१२३
२६.	काँपता संसार थर-थर !	....	१२४
२७.	झंकार हमारा परिचित है !	....	१२५
२८.	चाँद पीला ढल रहा है !	... .	१२६
२९.	मानव मैं अपमानित कब से !	... .	१२७
३०.	बंदिनी निद्रा हमारी !	....	१२८
३१.	मैं धरती पर का मानव—	....	१३०
३२.	जा रहा हूँ दूर परिचय को छिपाये—	....	१३१
३३.	ओ पथिक ! पौर को पीता चल !	....	१३२
३४.	ये दिवस मूक-सी भाषा में—	....	१३४
३५.	प्यास का परिहास मानव-ज्ञान—	....	१३५
३६.	क्यों उदास, तुम बोलो, पंथी !	... ...	१३६
३७.	मानव अपने को छलता है !	....	१३७
३८.	यह है भाग-दौड़ जीवन की !	....	१३८
३९.	ये गगन के गीत निशिदिन—	... .	१३९
४०.	व्योम की काली घटाएँ—	... .	१४०

———